श्री पाटनी दि० जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं० ७

स्व० शाह पं० दीपचन्दजी काशलीवाल

कृत

आत्मावलोकन

संपादक—श्री पंडित श्रेयांसकुमारजी शास्त्री, न्यायतीर्थ

प्रकाशकः—

श्री पाटनी दि० जैन ग्रन्थमाला

मारोठ (मारवाड़)

प्रथमावृत्ति	वीर संवत	मूल्य
१५००	२४७४	१=)

मिलने का पता—
श्री पाटनी दि० जैन ग्रंथमाला
मारोठ (मारवाड़)
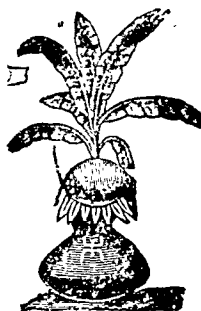
मुद्रकः—
नेमीचन्द बाकलीवाल
एम० के० मिल्स प्रेस मदनगंज (किशनगढ़

प्रकाशकीय

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में आशा से भी ज्यादा समय लग गया तथा कागज आदि की दृष्टि से भी इसको विशेष सुन्दर नहीं वना सके इसके लिये क्षमा याचना है।

वीर निर्वाण संवत् २४७३ के पौष मास में पूज्य श्री १०८ मुनिराज मल्लिसागरजी महाराज के किशनगढ़ पधारने के समय उनके आहार दान के उपलक्ष में पूज्य माताजी एवं पिताजी ने ८००) ग्रन्थ प्रकाशन के हेतु प्रदान किया, जिसमें से इस ग्रन्थकी १००० प्रति मुनिराज श्री १०८ मल्लिसागर ग्रन्थमाला मेरठ के लिये प्रकाशित की गई हैं तथा ५०० प्रति श्री पाटनी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला ने अपने लिये प्रकाशित कराई हैं। इस प्रकार इस संस्करण की १५०० प्रति मुद्रित हुई हैं।

पूज्य मुनिराज का जीवन चरित्र आदि विस्तृत रूपसे बृहत्स्वयंभूस्तोत्रसार्थ मल्लिसागर ग्रन्थमाला के पुष्प नं० ११ में प्रकाशित हो चुका है। पाठकगण वहां से जान लेवें।

सम्पादकजी को जिन्होंने अल्प समय में प्रेस कापी तैयार करके सम्पादन एवं प्रूफ संशोधनादि कार्य किया धन्यवाद देने के बाद मैं विराम लेता हूं और आशा करता हूं कि शाहजी साहब की अन्य कृति "चिद्विलास" जल्दी ही आपकी सेवामें प्रस्तुत की जावेगी।

निवेदकः—**नेमीचन्द पाटनी**

मंत्री—श्री मगनमल हीरालाल पाटनी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट

मारोठ (मारवाड़)

सम्पादकीय

(क) नामकरण—

आत्मार्थी, मुमुक्षु स्वर्गीय शाह श्री पंडित दीपचंदजी काशलीवाल की रचनाओं में प्रस्तुत "आत्मावलोकन" संक्षिप्त एवं सुविशद और महत्वपूर्ण कृति है। यह अन्वर्थ भी है, क्योंकि इसमें ग्रन्थ रचयिता ने आत्मा के अवलोकन कराने का अर्थात् आत्मा को पहचानने की विशद व्याख्या की है। अतः आत्मावलोकन का नामकरण भी अपना वैशिष्ट्य स्थापित करता है और वह उसके अनुरूप है। ग्रन्थ के पूर्ण होने पर ग्रन्थ कर्ता ने प्रस्तुत ग्रन्थ का नामनिर्देश "आत्मावलोकन स्तोत्र" भी किया है तथा "आत्मावलोकन" ग्रन्थ भी लिखा है। यह भी संभव हो सकता है कि इसके अन्तर्गत आई हुई १४ गाथाओं का कोई आत्मावलोकन स्तोत्र हो और उस ही के आधार पर यह भाष्य शाहजी साहब ने बनाया हो।

(ख) भाषा—

प्रस्तुत रचना की भाषा ठेठ ढूंढारी है। इसलिये संभव है कि पाठक महानुभावों को समझने में कठिनता प्रतीत हो। ग्रन्थ में भाषा साहित्य की दृष्टि से पर्याप्त परिवर्तन एवं परिवर्धन की आवश्यकता थी परन्तु मूल कृति और रचयिता के भावों को सुरक्षित रखने की दृष्टि से भाषा आदि में कोई परिवर्तन नहीं करके त्रुटित शब्दों को एवं स्पष्टीकरण योग्य शब्दों के स्पष्टीकरण को ( ) गोल कोष्टकों में दे दिया गया

है तथा वर्द्धित अनावश्यक शब्दों को प्रायः [ ] बड़े कोष्ठकों में दे दिया गया है और पाठान्तर को नीचे टिप्पण में दे दिया है। पाठक वृन्द ध्यानपूर्वक अध्ययन करें। साथ ही निवेदन है कि वे ग्रन्थ की भाषा एवं वाक्य विन्यास आदि की कमियों पर ध्यान नहीं देकर ग्रन्थकर्त्ता के आशय (अभिप्राय) को समझने में अपनी बुद्धि का उपयोग करें।

(ग) रचना-शैली—

इस ग्रन्थ के सब अधिकारों में ग्रन्थकार की रचना शैली पहले सामान्य कथन लिखकर फिर उसका विशेष स्पष्टीकरण करने की रही है। यदि ग्रन्थकर्त्ता ने कहीं इस प्रकार निर्देश नहीं भी किया हो तो भी पाठक वृन्द इस ही दृष्टि को सामने रखते हुये स्वाध्याय करें ताकि समझने में अधिक सुगमता हो।

सर्व प्रथम पृष्ठ १ से ६५ तक १४ प्राकृत गाथाओं की संस्कृत छाया सहित विशद व्याख्या की गई है। क्रम संख्या में १४ गाथाओं के होते हुए भी रचयिता ने इनको एकादशवाद करके संबोधन किया है। गाथाओं की क्रम-संख्या में इस ही कारण अन्तर है। ये प्राकृत गाथाएँ कौन आचार्य की बनाई हुई हैं या किस ग्रन्थ से यहाँ उद्धृत की गई हैं? विशेष कुछ ज्ञात नहीं हो सका। इसमें संदेह नहीं, कि गाथाओं का विषय बहुत ही सुन्दर है। प्राकृत गाथा पर संस्कृत श्लोकों की रचना कौन आचार्य्यकी है यह भी ज्ञात नहीं होसका। लेकिन ग्रन्थकार महोदय ने अधिकारों के नामकरण में तथा अधिकारों के पूर्ण करने में संस्कृत शब्दों एवं वाक्यों का बाहुल्यता से प्रयोग किया है तथा ग्रन्थ सम्पूर्ण होनेसे कुछ पहले पृष्ठ १८२ से १८५ तक में कुछ लक्षण संस्कृतके लिखे हैं। इन सब बातोंके आधारसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शाहजी द्वारा ही उपरोक्त

संस्कृत श्लोक रचे गये हों। इसके पश्चात् जीवादि अधिकारों द्वारा जीव के मूलस्वरूप तथा इतर तत्त्वोंके स्वरूपको मौलिक व्याख्या करते हुए आत्मा के स्वरूप का विशद अवलोकन कराया गया है। अंत में कुछ हिन्दी पद्यों द्वारा सम्पूर्णग्रन्थ का सार निकाल कर रख दिया गया है।

(घ) ग्रन्थ रचना का आधार—

इस ग्रन्थ रचने की प्रेरणा ग्रन्थकार को परम पूज्य आचार्य श्री कुन्दकुन्दजी महाराज द्वारा रचित 'समयसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय' आदि ग्रन्थों से मिली जान पड़ती है। क्योंकि प्रधान आधार उन्हीं का लिया गया है। श्री समयसारजी के 'जीवाधिकार' अजीवाधिकार, कर्ता-कर्म, पुण्य-पाप, आश्रव, संवर, बन्ध, निर्जरा और मोक्ष अधिकार' ज्योंके त्यों सभी अधिकार उसही क्रम से इस ग्रन्थमें लिये गये हैं। मात्र सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार इसमें नहीं लेकर उसका कुछ विषय कुनयाधिकार में लिया है। ये सब अधिकार पत्र ६५ से ८१ तक आये हैं और इन अधिकारों का विषय भी श्री समयसारजी के उन अधिकारों में से ही सूक्ष्म करके लिया गया है।

(ङ) ग्रन्थकर्त्ता एवं उनकी रचनाओंका परिचय—

ग्रन्थकर्त्ता एवं उनकी रचनाओं का परिचय सुविशद रूप से अनुभव प्रकाश की प्रस्तावना में प्रकाशित हो चुका है। अतः पाठक महानुभाव वहाँ से जान लेवें। संक्षेप में ग्रन्थकार ने 'चिद्विलास' ग्रन्थ के अन्त में अपना परिचय स्वयं निम्नाङ्कित रूप से दिया है:-

"यह ग्रन्थ दीपचन्द साधर्मी कियो है। वास सांगानेर था। [1]आंवेर में आए तब यह ग्रन्थ कियो। संवत् सतरा से गुण्यासी १७७९ मिति फाल्गुण बदी पंचमी को यह ग्रन्थ पूरण कियो। संत जन याको अभ्यास करियो।"

"इति श्री साधर्मी [2]शाह दीपचंद [3]कासलीवाल कृतं चिद्विलास नाम अध्यात्मग्रन्थ संपूर्णम्।"

अध्यात्म के पण्डित, अध्यात्मअनुभवी, आत्मार्थी एवं मुमुक्षु शाह श्री पण्डित दीपचन्दजी काशलीवाल की रचनाओं में से मुझे केवल चार रचनाएँ अनुभवप्रकाश, चिद्विलास, आत्मावलोकन और ज्ञान दर्पण अध्ययन करने को मिलीं। जिसमें से अनुभव प्रकाश तो इसी ग्रन्थमाला के छठे पुष्प के रूप में प्रकाशित हो चुका है, आत्मावलोकन आपके समक्ष प्रस्तुत है और ज्ञान दर्पण बहुत पहले प्रकाशित हो चुका है तथा चिद्विलास अभी प्रेस में दिया जारहा है। आशा है शीघ्र ही प्रकाशित हो जावेगा। भावदीपिका श्री दि० जैन उदासीनाश्रम तुकोगंज इंदौर से प्रकाशित हो रही है। इन पांच ग्रन्थरत्नों के अतिरिक्त अन्य रचना अभी तक प्रकाश में नहीं आई है।

उक्त ग्रन्थों के नामकरण ही ग्रन्थों के विषय को स्वतः सुविशद प्रकाशित करने वाले हैं। अनुभव प्रकाश में आत्मा के अनुभवन कराने के उपायों को ही विशेष रूप से बतलाया गया है। चिद्विलासमें चैतन्यप्रभु के अन्तःसाम्राज्य का सुविशद रूप से विवेचन किया गया है। ज्ञानदर्पण में ज्ञानघन आत्मा का

१. जैपुर राज्य को प्राचीन राजधानी का नाम है।

२. राजा द्वारा प्रदान की हुई पदवी

३. दिगम्बर जैन खण्डेलवाल जाति का गोत्र

मार्मिक उपदेश दिया है। और आत्मावलोकन के विषय में ऊपर बतला ही दिया गया है।

ऐसा ज्ञात होता है कि शाहजी साहब की सर्वप्रथम एवं सबसे विशद रचना यह आत्मावलोकन ग्रन्थ ही है। प्रस्तुत रचना की अपेक्षा अन्य रचनाओं की भाषा अपेक्षाकृत परिमार्जित है। अतः भाषाकी तारतम्यतासे भी यही कृति पहली मालूम होती है। अनुभव प्रकाश ग्रन्थ इस ही में से अंश लेकर रचा गया है तथा चिद्विलास को भी इसका आधार प्राप्त है। इसलिये इस ग्रन्थ का महत्व उनकी रचनाओं में सर्वाधिक है।

आचार्यकल्प, निर्भयवक्ता, पण्डित प्रवर श्री टोडरमलजी साहब ने भी अपनी रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आत्मावलोकन ग्रन्थ का अवतरण देकर इसकी प्रामाणिकता को सिद्ध किया है।

उपरोक्त ग्रन्थरत्नों की स्वाध्याय करने से रचयिता के गंभीर एवं सूक्ष्म मननशैली का सहज ही अनुभव होता है। अध्यात्म की सूक्ष्म संधियोंको खोलने में भी उन्होंने अथक परिश्रम किया है। ये ग्रन्थ मात्र पढ़ लेने योग्य ही नहीं हैं वरन् गहराई से मनन करने योग्य हैं। आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि आध्यात्मरसिक मुमुक्षुओं को इनके अध्ययन-चिन्तन से सूक्ष्म विषयों पर पर्याप्त प्रकाश मिलेगा।

पाठकवृन्द ! आज हमारा अन्तःकरण आनन्द विभोर हो रहा है कि हम आपके समक्ष एक अपूर्व आध्यात्मिक ग्रन्थ उपस्थित कर रहे हैं।

(२) संशोधन की कठिनाईयाँ एवं प्रस्तुत संस्करण की विशेषताएँ –

अमुद्रित प्रतियों में कैसी और कितनी अशुद्धियाँ रहती हैं और उनके संशोधन में कितना श्रम और शक्ति लगानी पड़ती

है। कितने ही ऐसे स्थल आते हैं जहाँ पाठ त्रुटित रहते हैं और जिनके मिलाने में मस्तिष्क थक जाता है। तथा मूल प्रति में पूर्णविराम, अल्प विराम आदि यथास्थान नहीं होने से और वाक्य विन्यासों के धारावाहिक रूप से लगातार चले जाते रहने से उनको यथास्थान लगाने और रखने में कितना परिश्रम करना पड़ता है यह भुक्तभोगी साहित्यिक एवं ग्रन्थसम्पादक ही जान सकते हैं। हमने इन अशुद्धियों को दूर करने का यथा साध्य पूरा प्रयत्न किया है, इस पर भी संभव है कहीं दृष्टिदोष या प्रमादजन्य अशुद्धियाँ रहगई हों तो विशेषज्ञ पाठकवृन्द ध्यान रखकर पढ़ें। व हमें सूचित करनेकी कृपा करें।

प्राप्त सभी प्रतियों के आधार से अशुद्धियों को दूर करके सबसे अधिक शुद्ध पाठ को मूल में रखा है और दूसरी प्रतियों के पाठान्तरों को नीचे फुटनोट में जहाँ आवश्यक मालूम हुआ दे दिया है। देहली की प्रति को हमने सबसे ज्यादा प्रमाणभूत और शुद्ध समझा है। इसलिये उसे आदर्श मानकर मुख्यतया उसके ही पाठों को प्रथम स्थान दिया है। इस तरह मूलग्रन्थ को अधिक से अधिक शुद्ध और उपयोगी बनाने का यथासंभव प्रयत्न किया गया है।

(३) आभार

मुझे प्रस्तुत ग्रन्थ को इस रूप में पाठकों के समक्ष रखने में जिन महानुभावों से कुछ भी सहायता मिली है मैं कृतज्ञता पूर्वक उन सबका नामोल्लेख सहित आभार प्रकट करता हूँ:—

सर्व प्रथम श्रीमान् कुंवर श्री नेमीचन्दजी साहब पाटनी जिनकी प्रेरणा से मैं इस कार्य में प्रवृत्त हो सका एवं प्रूफादि सम्बन्धी संशोधन दिये और बहुत सी सहायता पहुँचाई है। श्रीयुत श्रद्धेय अध्यात्मरसिक भाई रामजी भाई माणेकचन्दजी दोशी सोनगढ़, जिन्होंने प्रेस कापी के अनेक कठिन स्थलों को खूब गहराईसे मननकरके नेमीचन्दजीपाटनीको उनका स्पष्टीकरण दिया एवं यथास्थान टिप्पण भी कराये। आदरणीय जातिभूषण चौधरी कानमलजी साहब जिन्होंने सर्व प्रथम इस ग्रन्थ का परिचय एवं प्रतिलिपि कराकर संशोधनार्थ ग्रन्थ देने का कष्ट किया। श्रीयुत बाबू पन्नालालजी अग्रवाल एवं ला० रतनलालजी मेनेजर शास्त्र भण्डार दि० जैन नया मंदिर धर्मपुरा, देहली, जिन्होंने आत्मावलोकन की हस्त लिखित प्रति प्रेस कापी के लिये भेज दी, स्नेही मित्र पं० विद्याकुमारजी सेठी न्यायतीर्थ जिन्होंने अपनी की हुई प्रेस कापी देने की कृपा की। मैं इन सभी सहायकों तथा पूर्वोल्लिखित प्रतिदाताओं का आभार मानता हूँ तथा भविष्य में भी उनसे इसी प्रकार की सहायता देते रहने की आशा करता हूँ।

अन्त में जिन अपने सहायकों का नाम भूल रहा हूँ उनका और जिन ग्रन्थकारों, सम्पादकों, लेखकों आदि के ग्रन्थों आदि से सहायता ली गई है, उनका भी आभार प्रकाशित करता हूँ। इति शम्।

मदनगंज (किशनगढ़)

सम्पादक
श्रेयांसकुमार जैन
सिद्धान्त- न्याय- साहित्य शास्त्री
न्यायतीर्थ

भूल सुधार

पत्र	लाईन	भूल	सुधरा पाठ
३	१६	पावे जो होइ,	पावे; जो होइ (तो)
९	१६	करण	कारण
१५	४	[अनुदिश]	(अनुदिश)
१५	७	[है]	(है)
३३	१७	आत्मा, आचरण	आत्माआचरण
४१	४	धरै, कैसा	धरै कैसा
४२	१७	भी (होय हे)	(होय है)
४२	१७	तिस आचरणके	भी तिस आचरणके
४७	१०	। पुद्गल हो	(पुद्गल) हो
४८	२१	(ऐसा मानने	(ऐसा) मानने
५४	९	(नाश हुवा)	×
५४	२०	भरा	भए
५६	१२	नो	तो
५७	७	सा	सो
६५	१३	कहिये।	कहिये
६५	१३	लगु	लगु।
६६	१८	कोई (को हो)	कोई
७०	८	(प्रभाव)	×
७२	४	(प्रःम)	(कहा)
७२	१६	अचेतन	चेतन
७५	१५	(होय)	×
७७	७	न आकर	
७७	१९	तिसत	तिसतें
७८	७	प्रगट	प्रगटे

पत्र	लाईन	भूल	सुधरा पाठ
८४	१२	[की] [सिद्धि]	(की) (सिद्धि)
८८	१	नीयजो	नीपजो
९०	८	(तो)	×
९१	३	,,	×
९३	४	।	×
९६	१२	गो	गोली
९७	३	(वही आकार)	×
९७	४	(सो)	×
९८	११	गुदे	जुदे
१०२	९	अवरु भाव	
१०३	३	जोति	जाति
१०८	६	प्रवत्त	प्रवृत्त
१०८	६	द्रियोंका	इन्द्रियोंका
१०९	७	,,	×
१०९	७	परिणतिका	परिणतिका,
११५	२१	आवै ।	आवै
११५	२१	क्योंही	क्योंही ।
११६	१	(क्योंकि)	×
११६	१	जैस	जैसैं
११९	१	म	मैं
११९	८	(होंगा	न होंगा
१२१	१७	[ने]	(ने)
१२१	१८	तात	तातैं
१२२	१	[भी]	(भी)
१२२	११	ज्ञय	ज्ञेय
१२५	१	वगणा	वर्गणा

पत्र	लाईन	भूल	सुधरा पाठ
१२५	११	कम	कर्म
१३३	१	ज्ञय	ज्ञेय
१३५	१३	ज्ञयतैं	ज्ञेयतैं
१३९	१५	(कर्म)	×
१४३	४	[निकटतो]	(निकटता)
१४५	१४	चांदादि	चांदादिका
१४९	४	एक, इहां	
१४९	१८	परिणम	परिणाम
१६०	१८	पनाम	परनाम
१७०	४	(रैयत)	×
१७३	१६	उप श	उपदेश
१७९	३	योखता	पोखता

विषय प्रवेश

१४	८	कार्यरूप	संबंधरूप

विषय-प्रवेश

इस ग्रन्थका नाम आत्मावलोकन है। इसका उद्देश्य है आत्माका अवलोकन कराना, इसलिये सबसे पहिले यह जानना जरूरी है कि आत्मा क्या है, वह कहां किन अवस्थाओंमें पाया जाता है, और उसका यथार्थ स्वरूप क्या है?

विश्वकी व्यवस्था

आत्मा यानी जीव एक द्रव्य (वस्तु) है, उसही प्रकार पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश, काल भी ५ वस्तुऐं यानी द्रव्य हैं; हर एक द्रव्यमें अनन्त शक्तियां (गुण) हैं और हरएक शक्तिकी स्वतः समय २ पर अवस्था बदलती रहती है। इन छहों द्रव्यों (वस्तुओं) के समुदायका नाम ही लोक यानी विश्व है। वस्तु अनादि अनंत अविनाशी हैं, इसलिये लोकभी अनादि अनंत और अविनाशी है। अपनी अवस्थाओंको स्वतः पलटते २ द्रव्य अनादि अनंत-बना रहता है, इसही लिये विश्व भी अपनी नई नई हालतोंमें बदलते हुवे अनादि अनन्त कायम रहता है। जबकि द्रव्य किसी का बनाया हुआ नहीं है तो इस विश्वका भी कोई बनानेवाला नहीं हो सकता।

सत्तापना वस्तुका लक्षण

सत्तापना यानी अविनाशीपनाही द्रव्य (वस्तु) का लक्षण आचार्योंने किया है जैसे "सत् द्रव्य लक्षणं" और अपनी अवस्थाओंको पलटते २ ही द्रव्य (वस्तु) अनादि अनन्त कायम रह सकता है इसलिये सत्ताकी सिद्धिके लिये आचार्योंने "उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्" कहा है यानी द्रव्य (वस्तु) हरएक समय अपनी सत्ता कायम टिकाये रखते हुवे भी अपनी पूर्व अवस्था (पर्याय) का व्यय करके नवीन अवस्था (पर्याय) को प्राप्त करता रहता है।

आचार्योंने "गुणपर्यय वद्द्रव्यम्" के द्वारा यह समझाया है कि गुण (शक्ति) पर्याय (अवस्था) सहित ही वस्तु होती है अर्थात् शक्ति और अवस्थाओंके विना वस्तुका अस्तित्व ही नहीं होसकता।

पर्याय भी निश्चयनय से स्वयं सत्, अहेतुक है

उपरोक्त कारणोंसे यह सिद्ध हुआ कि संसारमें हरएक वस्तु अनंत गुणों (शक्तियों) को धारण करती है और हर एक शक्ति समय समय अपनी अवस्थाओंको पलटती २ अनादि अनंत वस्तु को कायम रखती है। कोई समयभी ऐसा नहीं हो सकता कि अवस्था पलटने विना रहजावे तथा कभी ऐसा भी नहीं हो सकता कि १ समय में २ अवस्थाऐं होजावें क्योंकि द्रव्यकी जो अवस्था

पलटती है वो स्वयं पलटती है इसलिये निश्चयनय से हर एक पर्याय स्वयं सत् अहेतुक है और कारण अपेक्षासे पर्याय स्वयं ही स्वयं का कारण है इसलिये इसके पलटनेमें कोई अन्य द्रव्यके आधार अथवा आदि की जरूरत नहीं होती, तथा जिसमें जिससमय जिसप्रकार-रूप सहारे होनेकी योग्यता है उसको कोई रोकभी नहीं सकता, क्योंकि ऐसा नियम है कि "असत्की उत्पत्ति नहीं होती और सत्का कभी नाश नहीं होता" इसलिये जिस समय वस्तुकी जिस शक्ति की जो अवस्था होने वाली है उस समय वह अवस्था ही होवेगी एक समयभी आगे पीछे नहीं होसकती और उसकी जगह कोई अन्य अवस्था भी नहीं होसकती तथा उस अवस्थाको कोई रोकना चाहे तो रुकभी नहीं सकती अन्य रूपभी नहीं होसकती; दूसरी वस्तुका, दूसरी शक्तिका अथवा दूसरी अवस्थाका भी आधार नहीं रखती, इसही प्रकार जो अवस्था नहीं होने वाली है वह हो ही नहीं सकती, कारण असत् की उत्पत्ति त्रिकालमें भी संभव नहीं है।

हरएक द्रव्य स्वचतुष्टयमें अस्ति, परचतुष्टयसे नास्ति स्वरूप ही है।

हर एक द्रव्यकी स्वचतुष्टयमें अस्ति (मौजूदापना) है और परचतुष्टयमें नास्ति है इसीका नाम अनेकांत और इस कथन शैली

---

१. समयसारके परिशिष्टके प्रारम्भ में देखिये—

अमृतचन्द्राचार्य

यदेव नित्यं तदेवानित्यमित्येकवस्तुवस्तुत्वनिष्पादकं परस्परविरुद्ध

का ही नाम स्याद्वाद है, आत्मा स्वचतुष्ठयमें भी है और परचतुष्ठय में भी है यानी कोई द्रव्यका कार्य कभी आपसे हो तथा कभी पर के द्वारा भी होजावे इसका नाम अनेकांत अथवा स्याद्वाद नहीं है। जैसे आत्म द्रव्यका, स्वद्रव्य=आत्मवस्तु, स्वक्षेत्र=आत्माके असंख्य-प्रदेश, स्वकाल=आत्मामें अनंत गुणोंकी वर्तमान समय२ में होने वाला परिणमन यानी पर्यायें, स्वभाव=आत्माकी ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि अनंत स्वाभाविक शक्तियां; इसही प्रकार आत्माकी अपेक्षा से कर्म तथा नो कर्मादि पुद्गल, पर द्रव्य हैं, पुद्गलके प्रदेश उसका स्वक्षेत्र जो आत्माके लिये पर क्षेत्र है, पुद्गलके स्वगुणोंकी समय २ वर्तने वाली पर्यायें उसका स्वकाल आत्माके लिये पर काल है, तथा पुद्गलकी स्पर्श, रस, गंधादि अनन्त स्वाभाविक शक्तियां पुद्गलका स्वभाव आत्माके लिये परभाव है, इस प्रकार आत्म द्रव्यकी स्वचतुष्टयमें अस्ति लेकिन पर चतुष्टयमें त्रिकाल नास्ति है यानी आत्मद्रव्य कभी भी कर्मादि पुद्गल द्रव्यके साथ मिल नहीं सकता तथा परस्पर एक दूसरे का कुछभी फेरफार नहीं कर सकते, उसही प्रकार पुद्गल कर्मकी भी कोईभी पर्याय, आत्मा की कोई भी पर्यायमें कुछभी नहीं कर सकती।

शक्तिद्वयप्रकाशनमनेकांतः

जयसेनाचार्य्य

अनेकांत इति कोऽर्थः ? इति चेत् एकवस्तुनि वस्तुत्वनिष्पादकं-अस्तित्व नास्तित्वद्वयादिस्वरूपंपरस्परविरुद्धसापेक्षशक्तिद्वयं यत्तस्य प्रतिपादने स्यादनेकांतो भण्यते।

इस प्रकारसे सब द्रव्य अपने स्वचतुष्टय में ही अनादि अनंत परिणमन करते रहते हैं और अपने परिणमनके लिये किसीको कोई दूसरेका आधार सहारा आदि नहीं है तथा किसी क्षेत्रकाल संयोग की वाट नहीं देखनी पड़ती, सबका अपनी २ स्वतंत्रतासे परिणमन होता ही रहता है।

सर्वज्ञपना क्या है

सच्चे देवका लक्षण सर्वज्ञ वीतरागपना है सर्वज्ञ किसे कहते हैं कि जो अपने स्वभावमें रहते हुवेभी विश्वके समस्त द्रव्यों यानी वस्तुओंमें हरएक की जिस २ समयमें, जिस २ क्षेत्रमें, जिस प्रकार से, जो जो अवस्था होने वाली है, होरही है अथवा होचुकी है उन सबको प्रत्यक्ष पूर्णरूपसे जैसीकी तैसी युगपत् जानते हैं। वीतरागीका ज्ञान पूर्ण होचुका इसलिये किंचित् भी न्यून नहीं जानता तथा वस्तुमें जो होने वाला है सो सब जान लिया अतः अधिक जाननेको कुछ रह नहीं जाता, इसलिये सारांश यह हुआ कि "जिस वस्तुकी जैसी अवस्था जिससमय होने वाली है, वैसी ही सर्वज्ञके ज्ञानमें आई है, और वैसी ही होवेगी ही"।

ऐसी श्रद्धासे ही वस्तु स्वभावका तथा सर्वज्ञका यथार्थ निर्णय होता है और "पर द्रव्यका मैं कुछभी नहीं कर सकता" ऐसी अकर्तृत्व पनेकी भावना जाग्रत होकर अपने ज्ञायक स्वभावकी रुचि जम जाती है यदि इससे विपरीत पर द्रव्यमें कर्तृत्वपनेकी रुचि हो तो उसको सर्वज्ञ और वस्तु स्वभावकी प्रतीति नहीं होती।

यही स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षामें भी कहा है कि—

जं जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि ।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा ॥ ३२१ ॥
तं तस्स तम्मिदेसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि ।
को सक्कइ चालेदुं इन्दो वा अहजिणिंदो वा ॥ ३२२ ॥

भावार्थ—जो जिस जीवके जिस देश विषैं जिस काल विषैं जिस विधानकरि जन्म तथा मरण उपलक्षणतैं दुःख सुख रोग दारिद्र आदि सर्वज्ञ देवने जाण्या है जो ऐसे ही नियम करि होयगा सो ही तिस प्राणीके तिसही देशमें तिसही कालमें तिसही विधान करि नियमतैं होय है, ताकूं इन्द्र तथा जिनेन्द्र तीर्थंकर देव कोई भी निवारि नाहीं सकै है । आत्मावलोकन पत्र ३० में भी ऐसा ही कहा है ।

विकारकी उत्पत्ति कैसे तथा निमित्त नैमित्तिक संबंध क्या है

उपरोक्त सिद्धान्तोंसे यह निर्णय होता है कि आत्माका जिस समय जिसप्रकारके पुरुषार्थ रूप स्वकाल (योग्यता) होती है उसी प्रकार स्वयं परिणमन करता है, लेकिन इतना जरूर है कि आत्मा जब विभावरूप परिणमन करता है उस समय स्वसे च्युत होकर पर द्रव्यका आश्रयपना जरूर स्वीकारता है ।

जहां तक स्वद्रव्यका आश्रय रखता है वहां तक विकार रूप परिणमन हो ही नहीं सकता और जिस समय विकारी परिणमन

है उस समय नियमसे पर वस्तुका आश्रयपना भी है। यथार्थ वस्तु दृष्टिसे देखो तो किसी वस्तुका किसी के साथ आश्रय-पना नहीं है, कारण परद्रव्यकी पर्याय भी तो अपने स्वकालकी योग्यताके अनुसार परिणमन करती हुई स्वतः उपस्थित हुई है। वह कुछ आत्म द्रव्यको परिणमन करानेके लिये नहीं आई है, और इसी प्रकार आत्म द्रव्यकी भी वह अवस्था इसपर द्रव्यका कुछ करने भोगनेके लिये नहीं आई है बल्कि वह भी अपने स्वकाल (योग्यता) से आई है।

जैसे कि आत्माका चारित्र गुण जिससमय अपने स्वकाल के अनुसार क्रोध[१]रूप परिणमन करता है उस समय उसके अनुकूल ही द्रव्य कर्म अपने परिवर्तन कालके अनुसार स्वयं उदयरूप उपस्थित होते हैं और बाह्य नोकर्म भी उसही प्रकारके अपने परि-वर्तन कालसे स्वयं उपस्थित होते हैं और उस समय जीव स्वाश्र यपनेको भूलकर पराश्रित परिणाम करता है और उन सबका आपसमें एक दूसरेसे उस समय यानी उस पर्याय मात्रके लिये निमित्त नैमित्तिक स्वतंत्र रूप संबन्ध कहा जाता है, यदि कोई उसी में निमित्त की उपस्थिती से विलक्षणता मानें तो कर्तृत्व और दो द्रव्योंकी एकत्व बुद्धिका दोष आता है।

न तो उपादान रूप स्वद्रव्यकी पर्याय ने निमित्तरूप पर-द्रव्यकी पर्यायमें कुछभी अतिशय प्रेरणा प्रभाव आदि किया है

---

१. निश्चय से अपने ज्ञायक स्वभाव को अरुचि का नाम ही क्रोध है।

और उसी प्रकार न निमित्तरूप परद्रव्यकी पर्याय ने उपादानकी पर्यायमें कुछ भी किया है, जैसे कि सूर्योदय होते ही बहुधा प्राणी जाग्रत होकर अपने योग्य प्रवृत्ति करने लग जाते हैं और सूर्यास्त होने पर विश्राम लेने लग जाते हैं, कुछ सूर्य उन प्राणियोंको उपरोक्त कार्यके लिये प्रेरणा नहीं करता ?

ऐसा ही श्री पूज्यपाद स्वामीने इष्टोपदेशकी गाथा ३४ में भी कहा है कि "जो सत् कल्याणका वांछक है, वह आप ही मोक्ष सुखका बतलाने वाला तथा मोक्ष सुखके उपायोंमें अपने आपको प्रवर्तन कराने वाला है इसलिये अपना (आत्माका) गुरु आप ही (आत्मा ही) है"। इसपर शिष्य ने आक्षेप सहित प्रश्न किया कि "अगर आत्मा ही आत्माका गुरु है तो गुरु शिष्यके उपकार, सेवा आदि व्यर्थ ठहरेंगे" उसको आचार्य्य गाथा ३५ से जबाब देते हैं कि—

"नाज्ञो विज्ञत्व मायाति विज्ञोनाज्ञत्व मृच्छति ।
निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेर्धर्मास्तिकायवत् ॥ ३५ ॥

अर्थ—अज्ञानी किसी द्वारा ज्ञानी नहीं होसकता, तथा ज्ञानी किसीके द्वारा अज्ञानी नहीं किया जासकता, अन्य सब कोई तो गती (गमन) में धर्मास्तिकायके समान निमित्त मात्र हैं अर्थात् जब जीव और पुद्गल स्वयं गति करे उस समय धर्मास्तिकाय को निमित्तमात्र कारण कहा जाता है उसी प्रकार शिष्य स्वयं अपनी योग्यतासे ज्ञानी होता है तो उस समय गुरुको निमित्त मात्र कहा जाता है उसी प्रकार जीव जिस समय मिथ्यात्व रागादि

रूप परिणमता है उस समय द्रव्यकर्म और नो कर्म (कुदेवादिको) आदिको निमित्तमात्र कहा जाता है जो कि उपचार कारण है। उपादान स्वयं अपनी योग्यतासे जिस समय कार्य रूप परिणमता है तो ही उपस्थित क्षेत्र काल संयोग आदिमें निमित्त कारणपने का उपचार किया जाता है अन्यथा निमित्त किसका ?

निमित्तको जुटाना नहीं पड़ता

जिस समय उपादान कार्य परिणत होता है उस समय योग्य निमित्त अपनी स्वतंत्रतासे स्वयं उपस्थित होते हैं।

ऐसा नहीं हो सकता कि किसी भी द्रव्यकी जिस समय जैसा परिणमन होनेकी योग्यता है उस समय उसके अनुकूल निमित्त विश्वमें नहीं होवे और उसका उस रूप परिणमन होना रुक जावे, अथवा किसी क्षेत्र, काल, संयोग की वाट देखनी पड़े अथवा निमित्तको जुटाना पड़े क्योंकि ऐसा निमित्त नैमित्तिक संबन्धका स्वरूप नहीं है।

हर एक द्रव्यकी १ समयकी पर्यायके परिणमनमें छहों द्रव्यों की वर्तमान पर्यायोंका कोईके साथ भावरूप कोईके साथ अभावरूप निमित्त नैमित्तिक संबंध होता है, यही सहज स्वतंत्र विश्वकी व्यवस्था है, श्री स्वामी अमृतचन्द्राचार्यने भी समयसार गाथा ३ की टीकामें ऐसाही कहा है कि—

"इसलिये सब ही धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, जीव द्रव्य स्वरूप लोकमें जो कुछ पदार्थ हैं वे सभी अपने

द्रव्यमें अंतर्मग्न हुए अपने अनंत धर्मोंको चूंबते—स्पर्शते हैं तो भी आपसमें एक दूसरेको नहीं स्पर्श करते। और अत्यन्त निकट एक क्षेत्रावगाहरूप तिष्ठ रहे हैं तो भी सदाकाल निश्चय कर अपने स्वरूपसे नहीं चिगते, इसीलिये विरुद्ध कार्य—(पर से नास्ति रूप कार्य) और अविरुद्ध कार्य—(स्व से अस्तिरूप कार्य) इन दोनों हेतुओंसे हमेशा सब आपसमें उपकार करते हैं।" निमित्त अपने परिवर्तन कालसे जिस समय जो आने वाला है वही आता है कुछ इसके लानेसे नहीं आता? अज्ञानी व्यर्थ का मिथ्या अभिमान करता है कि मैंने पर द्रव्यमें कुछ कार्य कर दिया यानी पुरुषार्थ करके निमित्तको जुटाया, जैसेकि किसी बैलगाड़ीके नीचे कोई कुत्ता चलने लगा और वह मानने लगा कि इस गाड़ी को मैं ही चला रहा हूं: तो यह उसका मिथ्या अभिमान है।

यहां कोई कहे कि सर्वत्र उपादान की मुख्यता से ही कार्य होता है और निमित्त की मुख्यता से कभी नहीं होता ऐसा माना जावे तो, एकांत हो जाता है?

उसका समाधान यह है कि श्री स्वामी अमृतचन्द्राचार्य्य ने अनेकान्तका[१] स्वरूप ऐसा बतलाया है कि "एक वस्तु में वस्तुपने की निपजाने वाली, अस्तिनास्ति रूप दो विरुद्ध शक्तियोंका प्रकाशित होना सो अनेकांत है" इसलिये "हर एक वस्तुमें उपादानकी मुख्यता से कार्य होता है निमित्तकी मुख्यता से नहीं" इसही में

१. पत्र ३ के टिप्पण में देखिये।

अनेकांतकी सिद्धी होती है, अन्यथा मानने से दो विरुद्ध शक्तियों का प्रकाशन नहीं होकर एकांत अस्ति आने से, निमित्त की मुख्यता से कभी भी कार्य होनेकी मान्यता में दो द्रव्यकी एकता रूप एकांत ही होता है तथा ऐसी मान्यता में किसी भी समय कोई अवस्था में भी जीव की स्वतंत्रता नहीं रहती और श्रद्धा में हमेशा भय बना रहता है कि प्रतिकूल कर्मका संयोग आ जावेगा तो ? ऐसे भयवान् पुरुषार्थ वाला, स्वतंत्र परिपूर्ण निरपेक्ष ज्ञायक स्वभाव की श्रद्धा करनेका बल कहां से लावेगा ।

इससे सारांश यह निकला कि कोई किसी द्रव्यके परिणमन का व्यवहारसे भी कर्ता हर्ता नहीं है, मात्र व्यवहारसे ही निमित्त नैमित्तिक संबन्ध कहा जाता है ।

परमें कर्तृत्वकी मान्यता ही रागादिको पैदा करती है

उपरोक्त सिद्धान्तसे यह निर्णय हुआ कि "मेरा आत्मा अपने ज्ञाता द्रष्टा स्वभावको छोड़कर स्त्री पुत्रादि समस्त अन्य जीव तथा धन, मकान, जेवर, जवाहरात, देश, गांव आदि समस्त परद्रव्य की किसी भी पर्यायको नहीं कर सकता ।" जब मैं किसीको भी नहीं कर सकता और नहीं रोक सकता तथा परद्रव्य भी मेरा कुछभी नहीं कर सकते तथा रोक सकते ऐसी श्रद्धा होगई तो कि "मैं पर द्रव्य को ऐसा करदूं, वैसा करदूं" इत्यादि विकल्प करना आत्माका कर्त्तव्य नहीं है, क्योंकि ऐसा करनेका अभिप्राय मिथ्या

द्रव्यमें अंतर्मग्न हुए अपने अनंत धर्मोंको चूंवते-स्पर्शते हैं तो भी आपसमें एक दूसरेको नहीं स्पर्श करते। और अत्यन्त निकट एक क्षेत्रावगाहरूप तिष्ठ रहे हैं तो भी सदाकाल निश्चय कर अपने स्वरूपसे नहीं चिगते, इसीलिये विरुद्ध कार्य-(पर से नास्ति रूप कार्य) और अविरुद्ध कार्य-(स्व से अस्तिरूप कार्य) इन दोनों हेतुओंसे हमेशा सत्र आपसमें उपकार करते हैं।" निमित्त अपने परिवर्तन कालसे जिस समय जो आने वाला है वही आता है कुछ इसके लानेसे नहीं आता? अज्ञानी व्यर्थ का मिथ्या अभिमान करता है कि मैंने पर द्रव्यमें कुछ कार्य कर दिया यानी पुरुपार्थ करके निमित्तको जुटाया, जैसेकि किसी बैलगाड़ीके नीचे कोई कुत्ता चलने लगा और वह मानने लगा कि इस गाड़ी को मैं ही चला रहा हूं: तो यह उसका मिथ्या अभिमान है।

यहां कोई कहे कि सर्वत्र उपादान की मुख्यता से ही कार्य होता है और निमित्त की मुख्यता से कभी नहीं होता ऐसा माना जावे तो, एकांत हो जाता है?

उसका समाधान यह है कि श्री स्वामी अमृतचन्द्राचार्य्य ने अनेकान्तका[1] स्वरूप ऐसा बतलाया है कि "एक वस्तु में वस्तुपने की निपजाने वाली, अस्तिनास्ति रूप दो विरुद्ध शक्तियोंका प्रकाशित होना सो अनेकांत है" इसलिये "हर एक वस्तुमें उपादानकी मुख्यता से कार्य होता है निमित्तकी मुख्यता से नहीं" इसही में

१. पत्र ३ के टिप्पण में देखिये।

अनेकांतकी सिद्धी होती है, अन्यथा मानने से दो विरुद्ध शक्तियों का प्रकाशन नहीं होकर एकांत अस्ति आने से, निमित्त की मुख्यता से कभी भी कार्य होनेकी मान्यता में दो द्रव्यकी एकता रूप एकांत ही होता हैं तथा ऐसी मान्यता में किसी भी समय कोई अवस्था में भी जीव की स्वतंत्रता नहीं रहती और श्रद्धा में हमेशा भय बना रहता है कि प्रतिकूल कर्मका संयोग आ जावेगा तो ? ऐसे भयवान् पुरुषार्थ वाला, स्वतंत्र परिपूर्ण निरपेक्ष ज्ञायक स्वभाव की श्रद्धा करनेका बल कहां से लावेगा।

इससे सारांश यह निकला कि कोई किसी द्रव्यके परिणमन का व्यवहारसे भी कर्ता हर्ता नहीं है, मात्र व्यवहारसे ही निमित्त नैमित्तिक संबन्ध कहा जाता है।

परमें कर्तृत्वकी मान्यता ही रागादिको पैदा करती हैं

उपरोक्त सिद्धान्तसे यह निर्णय हुवा कि "मेरा आत्मा अपने ज्ञाता द्रष्टा स्वभावको छोड़कर स्त्री पुत्रादि समस्त अन्य जीव तथा धन, मकान, जेवर, जवाहरात, देश, गांव आदि समस्त परद्रव्य की किसी भी पर्यायको नहीं कर सकता।" जब मैं किसीको भी नहीं कर सकता और नहीं रोक सकता तथा परद्रव्य भी मेरा कुछभी नहीं कर सकते तथा रोक सकते ऐसी श्रद्धा होगई तो फिर "मैं पर द्रव्य को ऐसा करदूं, वैसा करदूं" इत्यादि विकल्प करना आत्माका कर्त्तव्य नहीं है, क्योंकि ऐसा करनेका अभिप्राय मिथ्या

है जैसे कोई व्यक्ति अगर मुर्देको जीता मानें या जिलाना चाहे तो उसका यह अभिप्राय मिथ्या ही है, उसी प्रकार पर द्रव्यमें कर्तृत्वपना यानी परसे किसी प्रकार भी लाभ हानि मानना मिथ्या है। और यही रागद्वेषका मूल है संक्षेपमें कहो तो परमें करनेकी जिज्ञासारूपी राग, और बाधकके प्रति द्वेष जब ही आता है जब कि आत्मा परमें अकर्तृत्व पनेके स्वभाव (ज्ञायकमात्र) को भूलकर परमें कर्तृत्व मानने लगता है, और वही पर द्रव्यमें एकत्व बुद्धि है जो संसार का मूल है !

अपने ज्ञायक स्वभाव के निर्णय और आश्रयमें ही पर में अकर्तृत्व आता है और यही मोक्ष का यथार्थ पुरुषार्थ है

पर द्रव्यों से कर्तृत्व बुद्धि हटाकर अपने स्वभावकी ओर दृष्टि करनेपर मात्र ज्ञाता दृष्टापना ही अनुभव में आता है, अतः रागादि भावोंका अस्तित्व ही नहीं दीखता। इसलिये ज्ञानी मात्र ज्ञायकपने के सिवाय रागादिका भी कर्तृत्व नहीं स्वीकारता, उन सब को भी ज्ञेयतत्व में डालता है, क्योंकि रागादि पराश्रय करने से ही होते हैं अपने स्वभाव से च्युति होनेपर ही पर्यायमें होनेवाले रागादि अनुभवमें आते हैं, सो उनकी उत्पत्ती में भी मात्र अपनी वर्तमान पुरुषार्थ की निर्बलता को ही कारण मानता है कोई पर क्षेत्र, काल, संयोग, अथवा कर्मादिको नहीं; फिर भी ज्ञायक स्वभाव के जोर में उनकी उपेक्षा होनेसे रागादि टूटते ही जाते हैं और

स्वभाव का बल बढ़ता ही जाता है। इसी के जोर में रागादिको उपचार से कर्मकृत कहा जाता है, स्वच्छन्दी होने को नहीं। रागादिकी उत्पत्ति पर द्रव्य के आश्रय करनेसे ही होती है और स्वद्रव्य (ज्ञान स्वभाव) के आश्रय करने से निरंतर निर्मलता की उत्पत्ती होती है। ऐसे निर्णय से ही सर्व विश्व से उपेक्षा हो जाने से श्रद्धान में अत्यन्त निराकुलता आगई, यही परमसुख, स्वाभाविक सुख, आत्मीयसुख है, और उसही ज्ञायक स्वभावकी दृढ़ता एवं रमणता से चारित्रमें परम निराकुल शांती होने लगी, और जब अक्रम उपयोग से मात्र ज्ञायकपना ही रह गया और कभी एक समय के लिये भी स्वभाव से च्युति नहीं है ऐसी अवस्था विशेषका नाम ही मोक्ष है, वही अविनाशी परम २ उत्कृष्ट निराकुलता जनित सुख है। उसही का आंशिक अनुभव उपरोक्त निर्णय में ठहरने के समय सम्यक्ती आत्माको भी होता है, संक्षेप में कहो तो द्रव्य दृष्टि यानी स्वभावदृष्टि सो सम्यग्दृष्टि और पर्यायदृष्टि यानी निमित्ताधीन दृष्टि सो मिथ्यादृष्टि, स्वभावदृष्टिसे मोक्ष और पर्याय दृष्टिसे संसार भ्रमण होता है।

तब रागादिका कर्त्ता कौन है

अब यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि, रागादि आत्माकी अवस्थामें ही होते हुवे भी आत्माको उसका कर्त्ता कैसे नहीं माना जावे।

समाधान इस प्रकार है कि—

ज्ञानी आत्मा निरंतर अपने ज्ञाता द्रष्टा स्वरूपको अनुभवता होनेसे और उसीका स्वामी होनेसे रागादिका कर्त्ता नहीं है, और अज्ञानी स्व से च्युत होकर रागादिमें कर्तृत्व स्वामित्व रखता होने से रागादिका कर्त्ता है। अज्ञानी वर्तमान एक एक समयकी अवस्था में अपने स्वभावका आश्रय चूक कर किसी अन्य द्रव्य (निमित्त) का आश्रय स्वीकार करता है जिनको ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मके नामसे पुकारा जाताहै फलतः उस पर्यायमें निमित्तके कार्यरूप नैमित्तिक विकार उत्पन्न होता है। ऐसा नहीं हो सकता कि पर द्रव्यका आश्रय किये बिना ही आत्मा भूल करता हो, तथा ऐसा भी नहीं है कि पर द्रव्य आत्माको भूल करा देता हो, अनादि कालसे ही एक २ समयकी भूलको लंबाते हुवे इस आत्माको स्वभावसे च्युत होनेका तथा पराश्रय करनेका अभ्यास पड़ा हुवा है। इसी कारण अनादि कालसे इसको ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों के निमित्तपनेका संबन्ध एक एक पर्यायमें ही संतान क्रमसे लगा हुआ हैं। जिस काल यह आत्मा अपने पुरुषार्थसे किंचित् कालके लिये भी पराश्रय छोड़ स्वाश्रयपना स्वीकार करेगा इन द्रव्य कर्मोंका संबन्ध भी इसके छूटता ही चला जावेगा और थोड़े ही कालमें सिद्ध अवस्था प्राप्त हो जावेगी, इस प्रकार ज्ञानी जीव, अपने ज्ञायक स्वभावके बलसे अपनी ही अवस्थामें होने वाले रागादि विभावोंको दूर करनेके लिये, भेद ज्ञानके द्वारा, अन्य किसी भावका भी अपनेमें अस्तित्व नहीं स्वीकारनेसे, अन्य सब, जैसे भी जो भी भाव हों, सब पर

भावमें डालकर उपेक्षित रहता है और अपने ज्ञान मात्रमें जागृत रहता है। निरंतर एक स्वभावकी ही मुख्यता होनेसे अन्य सब गौण होजाते हैं।

अपनी पर्यायमें होने वाले क्षणिक रागादिको अपना स्वरूप नहीं मानते हुवे भी वर्तमान पर्यायमें चारित्रमें जितने अंश च्युत होता है उतनी ही अपनी निर्बलता रूपी भूलको स्वीकारता है। इसलिये आप स्वच्छन्दी नहीं बनता।

जिसको अपने स्वभावका ज्ञान नहीं, अपने कर्तव्यका होश नहीं, और समझनेका पुरुषार्थ नहीं, वह कहे कि "मेरे कर्मका उदय ही ऐसा है कि मुझे आत्म रुचि नहीं होती, क्रोधादि होते हैं, क्या करें, कर्म जैसा नचाता है वैसा ही नाचना पड़ता है, यह जीव तो कर्मका खिलौना है, आदि २" ऐसा जो कोई मानता है वह मिथ्याती, सांख्यमती की भांति है।

श्री स्वामी अमृतचन्द्राचार्य्यने भी समयसारके कलश २०५ में ऐसा ही कहा है कि—

मा कर्तारममी स्पृशंतु पुरुषं सांख्या इवाप्यार्हताः,
कर्तारं कलयंतु तं किल सदा भेदावबोधादधः।
ऊर्ध्वंतूद्धतबोधधामनियतं प्रत्यक्षमेनं स्वयं,
पश्यतु च्युतकर्तृभावमचलं ज्ञातारमेकं परं ॥२०५॥

अर्थ—अर्हतके मतके जैनी जन हैं वे आत्माको सर्वथा अकर्त्ता सांख्य मतियोंकी तरह मत मानो, उस आत्माको

भेद विज्ञान होनेके पहिले सदा कर्त्ता मानो और भेद ज्ञान होनेके बाद उद्धत ज्ञान मंदिरमें निश्चित नियमरूप कर्तापन कर रहित निश्चल एक ज्ञाता ही अपने आप प्रत्यक्ष देखो।

जो जीव रागादिको कर्म कृत मानकर स्वच्छन्दी एवं निरुद्यमी हो रहे हैं उनको आचार्य्य कहते हैं कि रागादि जीवके अस्तित्व में है और वर्तमान पर्यायमें आप करता हैं, "जो करता है वही नाश कर सकता है" इसलिये भेद ज्ञानके पहले तो रागादि का कर्त्तापना मानो और भेद ज्ञानके वाद शुद्ध ज्ञायक स्वभावके आश्रयके वलसे रागादिका कर्त्ता न मानों, ये रागादि पराश्रय करनेसे होते हैं अतः उससे उपेक्षा करके अपने एक निश्चय स्वभावको ही मुख्य करके उपचारसे रागादिको कर्म कृत कहनेका उपचार है।

इसही अपेक्षाको लेकर ग्रन्थोंमें अनेक जगह ज्ञानी जीव की अपेक्षा इन विभावोंका कर्त्ता उपचारसे कर्मोंको कहा गया है। जिसका प्रयोजन परद्रव्यका संयोग संबन्ध वतलाना मात्र है। इसही आत्मावलोकन ग्रन्थमें पत्र ३८ से ६५ तक में यह विषय इसही अपेक्षाको लेकर वर्णन किया गया है, इसकी पुष्टी ग्रन्थकारने स्वयं पत्र ७२ से ७३ तकमें तथा पत्र ११५ से १२९ तक करदी है।

पाठक तीनों अधिकार मिलाकर समझनेका प्रयत्न करें। इस प्रकार किसीभी ग्रन्थका अभिप्राय परद्रव्यसे अपना विगाड़

सुधार बतलानेका नहीं है लेकिन स्वभावसे च्युत होनेके समय संयोग संबंध (निमित्त नैमित्तिक संबंध) किस प्रकारका स्वतंत्र रूपसे होता है यही बतलाकर भेद ज्ञान करानेका तथा अपने चिदानन्द स्वरूपमें रमणता करानेका ही प्रयोजन है।

इसलिये जहां यह विषय आवे उपरोक्त अपेक्षा लगाकर समझने से यथार्थ वस्तु समझनेमें कभी भूल नहीं होगी और यथार्थ मार्ग मिलेगा अन्यथा अनादि कालसे जो "अपनी भूल दूसरेके सिर डालकर स्वयं भूल रहित स्वच्छन्दी बननेका अभ्यास" पड़ा हुवा है वही जारी रहेगा, जिससे संसार भ्रमणका कभी अंत नहीं आ सकता।

गोम्मटसारादिकी कथनीकी उक्त कथनसे संधि

अब यहां कोई कहे कि गोमट्टसारादिक बड़े २ ग्रन्थोंमें स्थान स्थान पर यह आता है कि आत्माको तीव्र क्रोध कषाय रूप द्रव्य कर्मके उदयमें तीव्र क्रोध होता है, मंद उदयमें मंद आदि २ तो यह कैसे ? उसका समाधान यह है कि यह कथन संयोग संबन्ध बतलाने मात्रको है, वास्तवमें तो आत्माकी स्वभावसे च्युतिका नाम ही विभाव है, वह विभाव च्युति की अपेक्षा से सामान्य रूप है, तो भी तारतम्यता की अपेक्षासे तथा जुदा २ गुणों की पर्यायों की अपेक्षासे अनेक प्रकारका है और उस विभावके समय जिस निमित्त-रूप परद्रव्यका आश्रयपना स्वीकार है वह भी अनेक प्रकारका है फलतः विभावके भी अनेक प्रकार प्रत्यक्ष ही अनुभवमें आते हैं, इसलिये

जितने प्रकार विभावोंके हैं उतने ही प्रकार उन निमित्त रूप पर द्रव्योंके हैं, चूंकि विभाव समय२ की अपेक्षा अनन्त प्रकार को लिये है इसलिये निमित्तभी अनंत प्रकारके हैं। आचार्योंने निमित्त की मुख्यतासे कथन करके उपादानमें होने वाले विकारी भावोंको, इन दोनों परसे दृष्टि हटा कर यानी आश्रय छोड़कर, अपने ज्ञाता दृष्टा स्वभावका आश्रय लेनेके लिये समझाया है।

जैसे कि मोहनीय कर्मकी दर्शन मोहनीय प्रकृतिके उदयसे तथा चारित्र मोहकी अनंतानुवंधी प्रकृति के उदयमें यह आत्मा सम्यग्दर्शनको प्राप्त नहीं कर सकता, ऐसे निमित्त के कथन की मुख्यताका जहां विवेचन हो इसका अभिप्राय यह समझना कि आत्माकी जिस पर्यायकी स्वभावसे च्युति है, उस पर्यायने निमित्त रूप पर द्रव्यका आश्रय लिया हुवा है, वह आश्रय कौनका है, कि दर्शनमोहनीय प्रकृति तथा अनन्तानुबन्धी प्रकृतिकी उस समयकी पर्यायका, तो उस पर्यायमें सम्यग्दर्शनपनेका अभाव है यानी जो पर्याय जिस समय उपरोक्त प्रकृतियोंकी पर्यायके निमित्तपने में जुड़ी हुई होगी उस पर्यायकी सम्यग्दर्शनके अभावरूप मिथ्यात्व अवस्था होगी। इसका मतलब यह कभी भी नहीं है कि उपरोक्त प्रकृतियां उदय में आईं इसलिये आत्माकी पर्याय मिथ्यात्वरूप होगई, जो ऐसा समझते हैं वे मूलमें ही भूल करते हैं, एक द्रव्यमें दूसरे द्रव्यका कर्त्तापना मानते हैं, जो त्रिकाल असत्य है।

निज स्वभावकी श्रद्धा ही कर्तव्य है।

सारांश यह है कि गोमट्टसारादि ग्रन्थोंकी कथनी आत्मामें होने वाली विकारी अवस्थाको बतलानेवाला माप है जैसेकि किसीके शरीरकी गर्मी यानी बुखार नापनेको थर्मामीटर ! कभी थर्मामीटर बुखार पैदा नहीं करता वह तो जितना बुखार हो वह बतला मात्र देता है उसी प्रकार निमित्तरूप द्रव्य कर्मकी कथनीसे आत्माकी समय २ में होने वाली विकारी अवस्थाका ज्ञान मात्र हो जाता है, उससे कुछ विकार नहीं घट सकता । इसका प्रयोजन तो निमित्त और शुभाशुभ विकार दोनोंपरसे दृष्टि हटाकर यानी आश्रय छोड़कर, स्वभावका आश्रय करानेका है। इसलिये अपने अखन्ड, अभेद, निरपेक्ष, ध्रुव ज्ञायक स्वभावके आश्रय द्वारा उसही का श्रद्धान ज्ञान एवं आचरण करना ही हम सबका मात्र कर्तव्य है, उसहीके लिये आचार्यों ने सर्व प्रथम तत्व निर्णयरूप अभ्यास करनेका ही जगह२ उपदेश दिया है अतः आत्मोपलब्धीके लिये तत्व निर्णयरूप अभ्यास सर्व प्रथम कर्त्तव्य है।

किशनगढ़
ता० ४-३-४८

निवेदक—
नेमीचन्द पाटनी

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
देवाधिकार (मंगलाचरण)	१
गुरु अधिकार	६
धर्माधिकार	८
विधिवाद	१०
चरितानुवाद	१२
यथास्थितिवाद	१४
ज्ञेयवाद	१५
हेय व्याख्या	१७
उपादेय स्वरूप व्याख्यान	१६
१० व्यवहार वर्णन	२१
११ निश्चय लक्षण	२६
१२ साक्षात् धर्म	३२
१३ बहिर्धर्म	३५
१४ मिश्रधर्म कथन	३८
१५ विकार उत्पत्ति	५०
१६ चित् विकार वर्णन	५१
इति एकादशवाद:	
१७ जीवाधिकार वर्णन	६५
१८ अजीवाधिकार वर्णन	६७
१९ कर्त्ता कर्म क्रिया अधिकार वर्णन	७२
२० पुण्यपापाधिकार	७५
२१ आश्रवाधिकार	७६
२२ बंधाधिकार	७७

विषय

२३ संवराधिकार
२४ संवरपूर्वक निर्जराधिकार
२५ मोक्षाधिकार
२६ कुनयाधिकार
२७ सम्यग्भावस्य यथाऽस्ति तथाऽवलोकनाधिकार
२८ सम्यक् निर्णय
२९ साधक साध्यभाव
३० साधक साध्य भावना उदाहरण
३१ मोक्षमार्ग अधिकार
३२ अन्तर्व्यवस्था कथन
३३ सम्यग्दृष्टि सामान्यविशेषाधिकार
३४ सम्यक्त्व गुणास्य व्यवरणं किंचित् तथा अमूर्तीक चेतनभाव संसारस्य व्याप्यव्यापकैकजीवतदधिकारः
३५ संसार कर्तृत्व अधिकार वर्णन
३६ अथ अनुभव विवरण
३७ अथ अन्यत् किंचित्
३८ अथ छद्मस्थिनां परमात्मप्राप्तेः सर्कलारीतिः
३९ अथ जीव भाव वचनिका
४० आत्मावलोकन स्तोत्र

ॐ नमः वीतरागाय

श्री पं० दीपचन्दजी शाह काशलीवाल कृत

आत्मावलोकन

देवाधिकार
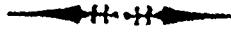
मंगलाचरण
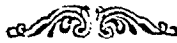
दप्पणदंसणेण य ससरुवं पस्सदि कोवि णरो।
तह वीयरायायारं दिट्ठा सयं राये तमहं हि ।१

दर्प्पणदर्शनेन च स्वस्वरूपं पश्यति कोपि नरः।
तथा वीतरागाकारं दृष्ट्वा स्वयं रागे तत् अहं हि ।१

यथा कोपि नरः दर्प्पणदर्शनेन स्वस्वरूपं पश्यति तथा रागे सति च पुनः वीतरागाकारं विंवं दृष्ट्वा तत् स्वयं अहं हि ।

अर्थ—जैसे कोई पुरुष आरसी देखि करि अवरु (उसमें) अपने मुखका रूप निशंकपनै

देखै है। निश्चयेन (निश्चय से) तैसैं आप सरागविषे होते संतै अरु (भी) वीतराग प्रतिबिंबकौं देखि करि, ते (वह) ही वीतराग आपनमैं (अपने आपमें) मैं ही हौं निस्संदेह, (ऐसा जाने)।

भावार्थ—आरसीके दृष्टान्त करि इहां इतनां भाव लेना जू आरसीका देखना अरु (उसमें) अपने मुखका देखना होइ है। सु इतना दृष्टान्त का भाव लेना। सोई ऐसा जु है दृष्टांत--इस संसारके विषै कोई पुरुष आरसीकौं देखि करि अरु (उसको) अपने मुखकी नीकी प्रतीति होइ है। निस्संदेहपनैं देखे हैं। इस दृष्टांत की नाईं आसन्न भवि (निकट भव्य) जीव भी, यह जु है जीव, जब जिसकाल विषैं सर्वथा सर्वकालविषै (सर्व) प्रकारकरि वीतराग रूप परिणम्या, तब तिस कालविषैं जैसैं एई जु हैं प्रतछि (प्रत्यक्ष) पद्मासन अथवा काउसग्ग (कायोत्सर्ग) आकार पाषाणकी मूर्तिका, न सिर कांपैं, न पलक भौंह नेत्र नासिका कांपै, न जीभ दांत होठ कांपै, न स्कंध (कंधा) भुजा हाथ अंगुली कांपै, न हीया पेट जांघ पींडी पाउ कांपै, न रोम फरकै, न नुह (नाखून) बधै, न बाल बधै, न हालै, न उठै, न बइठै। यहु प्रतछि जैसैं पाषाणकी मूरति देखिए है, तैसैं ही जब यहु (यह) जीव सर्वथा

वीतरागरूप परिणमैं, तब ही यहु देह परम उदारीक (परमौदारिक) उत्सर्ग (कायोत्सर्ग) अथवा पद्मासन आकार होइ जंगम (चेतन) प्रतिमा पाषाण प्रतिमासी होई। पाषाण अरु परम औदारिक प्रतिमाविषै भेद कछु न होइ, दोनौं वज्र की मूरति हैं। ऐसी वीतराग जीवकी जंगम मूरति अथवा थापना मूरति इन दोनौंको आसन्न भवि देखि करि ऐसा मनमांहि लावे है-तिस समैं ऐसा विचार होइहै। सो विचार क्या होइ है ?-

वीतराग तो परमात्मदशा है-परमेश्वर है-तहां तो सर्वज्ञ है। वीतरागका अर्थ यहु-जु वीत कहिए गया है, राग कहिए रंजनां, भिदकर तइसा होनां, ऐसा भाव (हो) जाइ, तिसकौं कहिए है वीतराग। तिसतैं तो यहु जान्या गया-तिसकी पिछली अवस्थाविषै तो वहु पुरुष रागी था। क्यौं (कि कुछ) गया तौ तब नाव पावै जो होइ, ऐसा नाव [नाम] न पावे। तिसतैं तिसकै राग था, जब राग गया तब वीतराग परमेश्वर कहाया।

इहां अवरु एक विचार आया-जु जाइगा सोई वस्तुत्व करि निपज्या नहीं है, सो कोई वस्तुकौं दोष उपजाया है। अवरु जु वस्तुत्वकारि निपज्या

है सो कब ही जाइ नहीं। यह प्रगट बात है। पै अवरु एक (बात) है, यह जु है दोष सो उस वस्तुत्व ही के उपजै है, वस्तु विना नहीं उपजै है। (फिर) भी वह विकार काल पाइकरि जाइ है (जाय है)। तब वहु जु है कछु वस्तुत्व भाव वंही रहि जाइ है; यामैं धोखा नांही। जइसैं पानीतैं उष्ण विकार दूरि भया अरु सीतल वस्तु भाव सहज ही रहि जाइ है। अवरु जैसैं सोनेतैं स्यामका कलंक दूरिभया जिस काल, तिस ही काल सौलहवान वस्तुभाव सहज ही रहि जाइ है। तिसतैं यह बात ठीक है, जु भाव जाइ है सु विकार है। तिस विकारके जातैं जु कछु वस्तुभाव है, सो सहज ही रहि जाइ है। तिसतैं नीकैं जान्या जाइ है (कि) जिसकै जब राग बीत्या तब तो जो वस्तुत्वभाव (था) सो ही प्रत्यक्ष रहि जाइ है। तो[1] वह वस्तुत्वभाव, सोई आपन परपुरुष वही है, कछु आप वस्तु सोही है। जु गया सो विकार ही था। किछु उस ही पुरुषकी भूलि-भ्रम है। पुरुषका मूल वस्तुत्वभाव यहु है, जो इस भूलिकैं गयें जु रहै।

---

१. विकार रहित जो वस्तुत्व भाव है, वही अपनी आत्माका स्वरूप है अर्थात् आत्मवस्तुका स्वरूप विकार रहित वस्तुत्व भाव ही है

जब इस विधि सांचकरि वीतरागकी जंगम थावर प्रतिमा देखैंतैं (देखने से) विचार आया, तब ही इस तरफ आपकौं भी जो विचार, तो क्या देख्या ? आपकौं सरागी देख्या, निस्संदेह। ऐसैं आपकौं सरागी देखतैं यहु ठीकता आई-जैसैं ए (ये) जीव सरागी थे वीतराग होइकरि वस्तुत्व-भावकौं रहिं गए हैं, तैसैं मेरा भी विकार राग वीतैगा तब मैं भी वस्तुत्वभावकैं रूपकौं ऐसैं प्रतक्ष निकसौंगा।

निस्सन्देह, तो मैं मूल वीतराग जु वस्तुत्व भाव है, सो ही मैं हूँ। तिस वस्तुभावतैं अभेद हौं, मैं ही हौं। अवरु जु यहु रागादि विकारका पसरा (फैलाव) है सो विकार है कछु[2] वस्तुत्व भाव विषै नाहीं। कछु वस्तुत्वभावकै ऊपरैऊपर दोष उपज्या है। मूल मैं वहु (वही) हौं (हूँ), जु इस विकारकैं जानैं जु रह जाइ है, सो ही मैं हौं, निस्सन्देहकरि। अवरु यहु विकार (का) पसारा सर्व, काल पाइकरि जाइगा तौ जाइयौ परन्तु मैं तो मूल वीतरागरूप स्वभाव हौं। तो ऐसैं वीतरागकी प्रतिमा देखतैं आपकौं ही

१. प्राप्त हुए हैं। २. जोधपुरकी प्रतिमें यह पंक्ति नहीं है।

वीतरागकी अभेद सम्यक् जाननेके परिणाम होइ है। तिसतैं, जैसैं आरसीका दर्शन वदन (मुख) के दर्शनकौं प्रगटै है तैंसैं वीतरागकी जंगम-थावर प्रतिमाका दर्शन जु है सोई संसारी जीवके वस्तुत्व भाव प्रगटनेंकौं दिखावनेंकौं (कारण) है। तिसतैं इन प्रतिमाकौं देवत्व नाम पाया ! क्यों ?

(क्योंकि यह) संसारीके निजरूप दिखावने का कारण है। इन वीतरागकी प्रतिमाके देखवेतैं निस्संदेह, तिसतैं प्रतिमाका देवत्वका कथन यौं करि आया है। ऐसा देवत्व अवरु ठौर (अन्य स्थान) न पाईये। सो ऐसा जो देव, इन परिणाम-हि कौं, नीचेकी व्यवहार-अवस्थाविषै कारन है ॥ १ ॥ इति देव अधिकारः ॥

गुरु अधिकार

गाथा

वियरायं वियरायं, जियस्स णिय ससरूओ वियरायं। मुहु मुहु गण'द वियरायं, सो गुरुपयं भासदि सया ॥ २ ॥

वीतरागं वीतरागं जीवस्य निजस्वस्वरूपो वीतरागं। मुहुर्मुहु गृणनाति वीतरागं, स गुरुपदं भासति सदा॥

वीतरागं वीतरागं जीवस्य निजस्वरूपो वीतरागं मुहुर्मुहु गृणनाति कथयति स पुरुष गुरुपदं स्थानं भासति शोभते।

(अर्थ) जीवका निजस्वरूप जु है, वीतराग है, ऐसी बारम्बार कहै (है) सोई गुरु पदवीको शोभै है।

भावार्थ—अठाईस मूलगुण, बाईस परीषह पंचाचार आदि देकरि विराजमान, परमाणुमात्र बाह्यपरिग्रह नांही अवरु अंतरंग (में) भी परमाणु मात्र परिग्रहकी इच्छा नांही, अनेक उदासीन भावहि करि विराजमान है, अवर निज जाति रूपकौं साधन करै है, सावधान हुइ (हो) समाधिविषै व्याप्त होइ है, संसारसौं उपरांवठे (उदासीन) परिणाम कीए हैं ऐसा जु है जैनिका साधु, आपकौं तो वीतरागरूप अनुभवै है मनकौं रिछरीभूत (स्थिरीभूत) करिकैं अवरु जब किसूकौं उपदेश भी देय हैं, तब अवरु सर्व दूरिकरिकैं एक जीवका निज स्वरूप वीतराग तिसीकौं बारंबार कहै है। अवरु किछु उसकै अभ्यास नाहीं, यही अभ्यास है। आप भी अंतरंग (विषै) आपकौं वीतरागरूप अभ्यासै है। अवरु बाह्य भी जब बोलै है, तब आत्माका

वीतरागस्वरूप (है) यही बोल बोले है। ऐसा वीतरागका उपदेश सुनतैं जु आसन्न भविकौं निस्संदेहपनैं करि वीतराग निज स्वरूपकी सुधि होइ है। यामैं धोखा नांही। तिस साधुकैं अइसो वीतराग काई कथन है जिसके वचन ही विषै, तिसी जयनी (जैनी) साधुकौं आसन्न भवि गुरु कहै है। क्योंकि अवरु कोई पुरुष ऐसा तत्त्वका उपदेश न कहे है, तिसतैं इसी पुरुषकौं गुरुकी पदवी शोभै है, अवरुकौं शोभती नांही, निस्संदेह करि यहु जानना। इति गुरु अधिकारः।

धर्माधिकार

गाथा

अहमेव वीयरायं, मम णिय ससरुवो वियरायं खलु। तम्हा हि वीयरायत्तं,फुड णियधम्मसहावो तप्पदि ॥ ३ ॥

अहमेव वीतरागं, मम निज स्वस्वरूपो वीतरागं खलु। तस्मात् हि वीतरागत्वं, स्फुटं निजधर्मस्वभावो तप्यति ॥ ३ ॥

एव अहं वीतरागं खलु मम निजस्वस्वरूपो वीतरागं तस्मात् स्फुटं निजधर्म स्वभावो हि वीतरागत्वं तप्पति ।

निश्चयसोहूं वीतरागं, अवरु निश्चयकरि मेरा निजरूप जु है-वीतराग है। तिसतैं प्रगट निजजाति वस्तुस्वरूप स्वभाव जु है, निश्चयकरि वीतराग-भावतैं देदीप्यमान है।

भावार्थ—जब अनादिसौं भ्रमतैं २ भव्य जीवनैं काल-लब्धि पाइ, अपना निज स्वस्वरूप

---

१. जहाँ २ काललब्धि शब्द आवे वहाँ मोक्षमार्गप्रकाश अ० ९ पत्र ४६२ के अनुसार ऐसा अर्थ लगाना—

प्रश्न—जो मोक्ष का उपाय काल लब्धि आएं भवितव्यानुसार बनें है कि, मोहादिक का उपशमादि भए बनैं है, अथवा अपने पुरुषार्थ तैं उद्यम किए बनै, सो कहो। जो पहिले दोय कारण मिले बनै है, तो हमकौं उपदेश काहे कौं दीजिए हैं। अर पुरुषार्थ तें बनै है, सो उपदेश सर्व सुनैं, तिन विषै कोई उपाय कर सकै, कोई न कर सकै, सो कारण कहा, ताका समाधान—एक कार्य होने विषै अनेक कारण मिलै हैं। सो मोक्षका उपाय बनै हैं तहां तो पूर्वोक्त तीनों ही कारण मिलै हैं, अर न बनै है, तहां तीनों ही कारण न मिलै है। पूर्वोक्त तीन करण कहे तिनविषै काललब्धि वा होनहार तो किछू वस्तु नाहीं। जिस कालविषैं कार्य बने सोई काललब्धि और जो कार्य भया सोई होनहार। बहुरि कर्मका उपशमादि है, सो पुद्गलकी शक्ति है। ताका आत्मा कर्ता हर्ता नाहीं। बहुरि पुरुषार्थ तैं उद्यम करिए है, सो यह आत्मा का कार्य है। तातैं आत्माकौं पुरुषार्थकरि उद्यम करनेका उपदेश दीजिये है। तहां यह आत्मा जिस कारणतैं कार्यसिद्धि अवश्य होय तिस कारणरूप उद्यम करैं, तहां तो अन्य कारण मिलैं ही मिलैं, अर कार्यको भी सिद्धि होय ही होय। बहुरि जिस कारणतैं कार्यसिद्धि होय अथवा नाहीं भी होय, तिस कारणरूप उद्यम करै, तहां अन्य कारण मिलैं तो कार्यसिद्धि होय, न मिलैं तो सिद्धि न होय। सो जिनमत विषैं जो मोक्षका उपाय कह्या है, सो इसतैं मोक्ष होय ही होय। तातैं

व्यक्तरूप परनम्यां, तहांसौं अपना जीवका रूप वीतराग जानैं-देखै-आचरैहै। यहु वीतराग निज जीवका धर्म अनुभवै है। अवरु सर्वभाव अशुद्ध भिन्न अधर्म जानै है। इति धर्माधिकारः ॥

विधिवाद

गाथा

सहावं कुणोदि दव्वं, परणमदि णिय सहावभावेसु। तमयं दव्वस्सविहिं विधिवादं भणइ जिनवाणी ॥ ४ ॥

स्वभावं करोति द्रव्यं परिणमति निजस्वभाव भावेषु। तमयं द्रव्यस्य विधिर्विधिवादं भणति जिनवाणी ॥

खलु निश्चयेन जीवद्रव्यस्य वस्तुनो अयं प्रत्यक्षविधिरर्थ यथार्थयुक्तिः, निजस्वभावभावे स्वजातिस्वरूपविषये मध्ये जीवद्रव्यं वस्तुस्वभावं स्वस्वरूपं करोति, उत्पद्यते वा अथवा परणामति, एवं जिनवाणी दिव्यध्वनितं स्वरूपपरिणामनं विधिवादं वस्तुरीतयुक्तिकथनं भणाति कथयति।

निश्चयकरि वस्तु की यहु सांची रीति है जु निजजाति अपने स्वरूपविषै वस्तु जीव अपनेंई

जो जीव पुरुषार्थकरि जिनेश्वरका उपदेश अनुसार मोक्षका उपाय करै है, ताके काललब्धि वा होनहार भी भया अर कर्मका उपशमादि भया है, तो यह ऐसा उपाय करै है। तातैं जो पुरुषार्थ करि मोक्षका उपाय करै है, ताके सर्व कारण मिलैं हैं, ऐसा निश्चय करना। अर वाकै अवश्य मोक्षकी प्राप्ति हो है।

स्वरूपकौं उपजै है, परणमै है, जिनवाणी-द्वादशाङ्ग वाणी-तिसकौं विधिवाद कहइ ।

भावार्थ—एक तो इस द्वादशाङ्गविषै ऐसा कथन चलै है- सो क्या ? जु जीव अपनेंई स्वरूप ज्ञान-दर्शन-चारित्रकौं परणमै है, तिसरूप परिणमतैं कर्म ही का संवर होइ है, कर्म ही की निर्जरा होइ है, अवरु कर्म ही की मोक्ष होइ है । तहां परमानन्द निजसुख उपजै है । ऐसी जीवकी स्वरूपपरणति जीवकौं विधियोगि है, क्योंकि (जीव) सुखी होइ है। अवरु जु परभाव अशुद्धरूप परणति है जीव की, तिसपरणतिसौं परणमतैं कर्म ही का आश्रव होइ है अवरु आत्म प्रदेशनिसौं परस्पर एक क्षेत्रावगाहकरि कर्म ही का बंध होइ (है)। पुण्य-पाप विपाक होइतैं तव दुखी होइ है। तो ऐसी जीवकी अशुद्ध परनति जीवकौं अविधि रूप है- अयोग्य है क्योंकि जीव दुखी होई है तिसनैं इस जीवकौं परमानंद सुख हवनेकौं स्वरूपपरणति विधियोग्य है । तिसतैं जब स्वरूपपरणतिरूप परिणवै है तव सहज ही तिस परिणामहिस्यौं अविधिपरणति [अवैधपरणति] रहि जाइ है। अवरु वचन-व्यवहारकरि भी

यौं ही कहिये हैं- स्वरूप परिणतिकौं प्रवर्तौं, यहु प्रवर्तन तुम्हकौं योग्य है ॥ इतिविधिवादः ॥

चरितानुवाद

गाथा

**रायदोह भावाणं, उदियभावाणं कहाकहणं जहा।
तं चरियाणुवायं हि, जिणसमय णिद्दिट्ठं तहा ।५।**

**रागदोषभावानां, उदीकभावानां कथाकथनं यथा
तं चरितानुवादं हि, जिन समये निर्दिष्टं तथा ॥५॥**

हि सत्येन यथा येन प्रकारेण रागदोषभावानां पराचरणभावानां वा उदीकभावानां दुखास्वादभावानां कथाकथनं स्वरूपकथनं तं कथनं चरितानुवादं-चारित्रवादं-जिनसमये द्वादशांगेर्निर्दिष्टं कथितं ।

निश्चयकरि जिस २ प्रकारकरि परआचरन भाव ही का, अथवा शुभ-अशुभ स्वादभाव ही का, जु स्वरूपकथन तिस कथनकौं चरितानुवाद, ऐसी संज्ञाकरि द्वादशांगविषै कह्या है।

भावार्थ—पुद्गल स्वामित्व-मिथ्यात्व-सो पर आचरणका कथन है अवरु उच्चस्थानस्यौं गिरनां सो गिरना भी पराचरण ही प्रगटै है। अज्ञानीके स्थूलबन्ध अवरु अबुधपूर्वक (अबुद्धिपूर्वक) जघन्य ज्ञानीके सूक्ष्म बन्ध, ऐसैं बंध ही का भाव सो भी

पराचरणकी प्रसिद्धता, सरागी जीवभाव सो भी पराचरणकी प्रसिद्धता है, ऐसा २ भाव ही का जु कथन सो केवल पराचरण का चारित्र है। अवरु यहु क्रोध, पुद्गल उदय रसका भोग, मान, माया, लोभ, अनन्तानुबन्धि या अप्रत्याख्यान या प्रत्याख्यान या संज्वलन-नोकषाय, ए (ये) सर्व पुद्गल उदय रसका भोग, गति संबन्धी पुद्गल हि का, जोग सम्बन्धी पुद्गल हि का [1]इन्द्रियविषै आवरण पुद्गल हि का, अन्तराय पुद्गल हि का, इन्द्रियविषय पुद्गल हि का, पुण्य-पाप पुद्गल हि का; एवं सर्वपुद्गल उदय रसका भोग, ऐसे भोग होतइ जु जीवकौं क्रोधी कहिये, मानी कहिये, मायावी कहिये, लोभी कहिये, मनुष्य कहिये, देव कहिये एवं पुन्नी (पुण्यशाली) कहिये पापी कहिये, दुखी कहिये यौंकरि जु सर्वजीवहि का कथन कहिये, सो सर्व पुद्गलविपाकके भोगभावका नानाप्रकार चरित्रकरि तिसका दरसाव है। ऐसैं इन दोनों पराचरण उदीक भाव हि कौं जु नानाप्रकारके [2]रूप करि तिन ही का

---

१. यह शब्द जोधपुरवाली प्रतिमें नहीं है। २. यहांसे प्रारम्भ होकर 'चरित्रसंज्ञा कहिये' यहां तकका पाठ जोधपुर वाली प्रतिमें नहीं है।

दरसाव कहिये वैई प्रगट होइ है ऐसे सर्व इन दोनौंके भाव, तिन सर्व ही कौं चारित्रसंज्ञा कहिये। सो ऐसा चरित्रकथन भी द्वादशांगविषै चलै है॥ इति चरितानुवाद॥

यथास्थितिवाद

गाथा

अहमज्झउड्ढलोया, लोयालोयाहि सव्वदव्वाणि।
सासयं चिट्ठंति जहा, जहा ठियेतं भणइ समये
॥ ६ ॥

अधमध्यउद्र्ध्वलोका, लोकाहि षट् सर्वद्रव्यानि।
सास्वतं तिष्ठंति यथा, यथा स्थितं भणति समये।६

अधमध्यउर्ध्वलोका त्रैलोक्यलोकालोका वा षट्सर्व्व द्रव्यानि हि स्फुटं यथा येन येन प्रकारेण सास्वतं नित्यं तिष्ठन्ति तं यथा सास्वतं भावं समये परमागमे यथा स्थितं भणति।

पाताललोक, मृत्युलोक, स्वर्गलोक जु है, अवरु लोक अलोक जु है, अवरु छहु द्रव्य जु है ते सर्व जैसैं २ अपनी २ सास्वती स्थिति करि तिष्टै हैं तिस सास्वती स्थिति कौं जिनागमविषैं यथास्थिति कथन कहिये।

भावार्थ—सात नरककी जैसी सास्वती स्थिति असंख्याता द्वीप-समुद्रहि की जैसी सास्वती स्थिति, सोलह स्वर्ग नव ग्रैवेयक, नवनडोत्तरे [अनुदिश] पंच पंचोत्तरे (विजयादि) विमान, सिद्धशिला अवरु सर्व तीनौं वातवलय, इनकी जैसी सास्वती स्थिति है तैसी स्थिति सदा सास्वती रहइ [है]। अवरु जैसी लोकाकाश की स्थिति है, तैसी सास्वती स्थिति है। अलोकाकाशकी जैसी स्थिति है तैसी सास्वती स्थिति है। जीव पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश, काल ए छहों द्रव्य अपने२ जैसैं २ गुणहि करि अपने२ जैसे२ पर्यायहि करि सदा सास्वतै छहौं द्रव्य सास्वती स्थितिकौं तिष्ठै है। अपनी २ सत्ता भिन्न२ करि अपनी२ जैसी२ स्थिति है, तैसी २ स्थितिस्यौं कबहु न चलै। जैसे के तैसे ही रहै सदा, तिसका नाम यथास्थिति भाव कहिये। ऐसा यथास्थिति भावका कथन भी द्वादशांगविषै चलै है ॥ इति जथास्थितवाद जानना ॥

ज्ञेयवाद

गाथा

णाणस्स जावविसया, सपर सव्वदव्वगुणा तिप-

ज्जाया। सहावविभाव भावा, णेयं हवदि तं खलु समये ॥ ७ ॥

ज्ञानस्य यावद्विषया, स्वपरद्रव्यगुणा त्रिपर्यायाः। स्वभावविभावभावा, ज्ञेयं भवति तं खलु समये। ७

यावद्विषया पदार्था ते तावत् ज्ञानस्य ज्ञेयं ज्ञातुं योग्यं भवति। ते के? स्वपरसर्वद्रव्यगुणा, अतीत-अनागत-वर्तमाना त्रयपर्याया, स्वभावविभावा, निजवस्तुजातिभाव, परविकारभावा खलु स्फुटं तं ज्ञेयं समये आगमे भणितं।

जेतेक कछु वस्तु है तेतेक सर्व ज्ञानके जाननें कौं योग्य होइ है। ते कौन? जेतेक कछु निज द्रव्यगुण-परद्रव्यगुण हैं, अवरु जेतेक कछु अतीत अनागत-वर्तमान द्रव्यकी पर्याय हैं, अवरु जेतेक कछु निज-निजभाव परभाव हैं, तेई [वे सब] प्रगट हैं तेई जु हैं ज्ञेयभाव आगमविषै कह्या है।

भावार्थ--भो! यहु जु है ज्ञान कहिये जानना तिस जाननेकौं, जेतेक कछु जानना है सो सर्व ज्ञेय नांव पावै। ते क्या २ है? जानना गुण जु है, निज द्रव्यसत्ताकौं जानै है, निज एक द्रव्यके अनंतगुण तिनकौं जानै है, तिस निज एक एक गुणकी अनंतशक्ति तिनकौं जानै है। अवरु निज-द्रव्य-गुणका परिणमन तीनौं कालका जुदा

जुदा जानैं है। अरु जानना आप है, अपने जानने रूपकौं भी जानैं है। यौं ही (इसीप्रकार) परद्रव्यहिं कौं जुदा जुदा जानै है। एक एक पर द्रव्य के अनंतगुण जानै है। तिनपर एक एक गुणकी अनंतशक्ति जानै है अवरु तिन परद्रव्यगुणहि का परिणमन तीनौं कालका जुदा-जुदा जानै है अवरु[1] छहौं द्रव्य का गुण पर्यायनिका निज जाति स्वभावरूप भावकौं जुदा जानै है। अवरु जीवके पर भावकौं जुदा जानै है, पुद्गल[2] के परभावकौं जुदा जानै है, संसार-परनतिकौं जानै, मुक्ति-परनतिकौं जानैं (है)।

भावार्थ— जेतेक द्रव्य-गुण -पर्याय भाव है, तेतेक सर्व साक्षात् जानै है। ऐसा जु कछु है सर्व ज्ञान गुणके जाननेके गोचर[3] आवना सो आवना सर्व ज्ञेय नाम पावै है। ज्ञानके गोचरकौं ज्ञेयकरि कथन आगमविषै चलै है सो जानना॥ इति ज्ञेयवाद॥ ७॥

हेय व्याख्या

गाथा

जह ससहावे परिणमदि, तह विभावो सयं सहयेण हीयदि। तं तत्थ हेय भावं, हेयभाव मिणयं जिणणिद्दिट्ठं॥ ८॥

१-२-३ ये पंक्तियां जोधपुरवाली प्रति में अधिक हैं।

यथा स्वस्वभावे परिणमति, तथा विभावो स्वयं सहजेन हीयति। तं तत्र हेय भावं, हेय-भावमिदं जिननिर्दिष्टं ॥ ८ ॥

स्वस्वभावे ज्ञानदर्शनचरित्रात्मनि निजजातिस्वरूपे यथा येन२ क्रमेण परिणमति चरति तिष्ठति वा अनुभवति वा विश्रामति, तथा तेन २ क्रमेण विभावो विकारभावः तत्र तस्मिन् काले सहजेन अयत्नपूर्वकेन स्वयं हीयति नश्यति विलयं याति तं हेयभावं नास्ति-भावं इदं जिननिर्दिष्टं जिनकथितं।

(अर्थ) यहु आत्मा अपनी निजजातिरूपविषै ज्यौं ही ज्यौंही (जैसे जैसे) परिनमै है, विश्राम लेइ है, त्यौंही त्यौंही (तैसे तैसे) अशुद्ध भाव जु है, तिसी कालके विषै यत्न विना ही आपनपैं (अपने आप) ही कहूं नाश होइ जाइ है। तेई (वह ही) अशुद्ध भाव जु है, अनित्य भावकौं है। यहु हेयभाव जिनवचनमैं कह्या।

भावार्थ—भो! यहु चारित्रगुण ज्यौं ज्यौं निज स्वरूप विषै प्राप्त होइ है, स्थिर विश्राम लेय है ज्यौं ज्यौं; तिसैं तिसैं कालके विषै सर्व गुणहि का अशुद्धता-विकार भाव-अनित्य भाव-क्षणभङ्गुर भाव, ते (वे) आपनपैं (अपने आप) ही नास्ति (नाश) होता जाइ है-विलय होइ जाइ है—सो उसकौं

हेयभावकरि बखान्यां जिननैं, ऐसा हेयभावका कथन जिनागमविषै चलै है सो जानना ॥ ८ ॥
इति हेयव्याख्यानः ॥

उपादेय स्वरूप व्याख्यान

गाथा

ससमयस्स समयपत्तो, णियसरूवमायरइ परिणामेहिं । परिणमदि वाससरूवं, तमुवादेयं भणइ जिणो ॥ ९ ॥

स्वसमयस्य समयप्राप्तौ, निजस्वरूपमाचरयति परिणामैः । परिणमति वा स्वस्वरूपं, तं उपादेयं भणति जिनः ॥ ६ ॥

समयप्राप्तौ काललब्धिप्राप्तौ सति स्वसमयस्य चारित्रस्य निजस्वरूपस्य परिणामैः आचरयति व्याप्नोति वा अथवा एवं स्वरूपं परिणमति तं स्वस्वरूपं उपादेयं आचरणं जिन भणति ।

(अर्थ)—ज्यौं ज्यौं काललब्धिकी प्राप्ति आती जाइ है तिस तिस काललब्धि प्राप्ति विषै जु आत्मचारित्र गुणका निजरूप आत्माई का आचरण सो परिणामहिकरि व्यक्त व्यापै है। अथवा यौं भी कहो सो स्वरूपाचरण ही प्रवर्तै है।

तेई (वह ही) स्वचरण परिणमनसो (स्वरूपाचरण के परिणमनको) उपादेयसंज्ञाकरि जिन कहे है।

भावार्थ— जे जे (जो २) स्वचारित्रकी शक्ति विकाररूप होइ रही है, तेई तेई ज्यौं ज्यौं काल-लब्धि पाये संतै तिस स्वचारित्रकी निजरूप परिणामहिके परिनमनें करि होइ है, सो स्वरूप ग्रहण (है)। अवरु यौं करि कोई कहो कि तिस स्व-चरित्रका स्वरूप प्रगट होइ प्रवर्तै है सो भी स्व-रूपग्रहणका ही कथन है, ऐसे जु प्राप्तिरूप स्वरूप का परिणमन तिसकौं उपादेयसंज्ञा जिनहूनैं कही है। सो उपादेय आगमविषै जानना॥ इति उपादेय स्वरूपव्याख्यानं ॥ ९ ॥

संसारपरणतिका नास्तिपना सो हेय जानना। अवरु जो स्वरूपकी शुद्धताका प्रगट हवना सो उपादेय जानना। एक ही कालके विषै दोनौं होते जाइ हैं। इति हेयउपादेयौ निश्चयौ। व्यवहारकरि परपरिणति राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभादि सर्व अवलम्बन हेय करना। संसारी जीव-निकौं एक चित् आत्मपिण्ड ही विषै अवलम्बना, वैरागता, उदासीनता संवर उपादेय करना, ऐसा उपदेश करना। (ऐसे) व्यवहारहेयउपादेय जानना।

व्यवहार वर्णन

गाथा

पज्जाय भवना सव्वे, सव्वे भेयकरणा च जोग षिरणाहि। ससहावदोणकधणा, तं ववहारं जिनभणिदं ॥ १० ॥

पर्यायभावना सर्वे, सर्वे भेदकरणा च जोग क्षरणाहि। स्वभावतोऽन्यकथना तं व्यवहारं जिन भणितं ॥ १० ॥

सर्वे पर्यायभवना सर्व्वपर्यायजाता भावा व्यवहारं भवंति हि स्फुटं। सर्वे भेदा करणा भावा व्यवहारं भवंति। च पुनः जोगक्षरनावं बन्धमोक्षव्यवहारं भवंति, पुनः स्वभावतः अन्यकथना अन्यवादा व्यवहारं भवंति; तं व्यवहारं जिनभणितं कथितं।

सर्व जेतेक भाव पर्यायके होहि, ते सर्व व्यवहार नांव पावै। अवर जेतेक एकके अनेक भेद कीजे, ते ते सर्व व्यवहार नांव पावै। अरु जेतेक बंध्या-खुल्या, तेतेक सर्व व्यवहार नांव पावै। अवरु स्वभावतैं जु अवरु कहिये भाव, ते सर्व व्यवहार नांव पावै॥ तेई व्यवहार जिनागमविषै कह्या है।

भावार्थ—आकाशविषै सर्व द्रव्यहि का रहना; जीव-पुद्गलादिकौं धर्म अधर्म गतिस्थिति

करि सहकार हवना, अथवा सर्व द्रव्यहि के परिणाम परणमावनेंकौं कालकी वर्त्तना सहकार हवना, अवरु पुदूगलादि गतिकरि कालद्रव्यका परमान पारमान उपजावना, छहौ पर ज्ञेय ज्ञानविषै, ज्ञान छहौं परि ज्ञेय विषै, ज्ञान-दर्शन गुणहीकी एक एक शक्ति, एक एक स्वपरज्ञेय भेद हि प्रति लगावना। ऐसे ऐसे भाव अवरु परस्पर सर्व द्रव्य ही का मिलाप हवना, ऐसे२ पर्याय ही के भाव अवरु विकार उपज्या स्वभाव नाश भया, पुनः स्वभाव उपज्या, विकार नाश भया, जीव उपज्या जीव मूवा, यह स्कन्धरूप पुदूगल भया वा कर्मरूप भया वा[1] अविभागी पुदूगल भया, संसारपरनति नाश भई, सिद्धपरनति उपजी, अवरु मोह अंतरायकर्म ही की रोक नाश भई। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तस्वचरित्र, अनन्तवीर्यकरि खुले, मिथ्यात्व गया, सम्यक्त्व भया, अशुद्धता गइ, शुद्धता भई। पुदूगलकरि जीव बध्या, जीवके निमित्त पाइ करि पुदूगल कर्मरूप भए। जीवने कर्म नास किये, यहु यहु उपज्या यहु यहु विनश्या, वहु उपज्या वहु विनस्या ऐसे २ पर्याय ही के

---

१ देहली वाली प्रति में यह पंक्ति अधिक है।

भाव, ऐसे २ उपजे विनसे पर्याय ही के भाव सर्व व्यवहार नांव पावै।

अवरु एक आकाशके लोक-अलोक भेद कीजै,[1] कालकी वर्तनाका अतीत अनागत वर्तमान भेद करना। एवं अन्य अवरु एक वस्तुका द्रव्य गुण पर्याय करि भेद करना। एक सत्का उत्पाद व्यय ध्रौव्य करि भेद करना। एक वस्तुकौं कर्ता कर्म क्रिया करि भेद करना। एक जीव वस्तुकौं बहि-रात्मा अंतरात्मा परमात्मा; एक द्रव्यसमूहकौं असंख्याते वा अनन्ते प्रदेशहि करि भेद करना। एक द्रव्यकौं अनंत गुणकरि भेद करना, एक गुणकौं अनंतशक्तिकरि भेद करना, एक पर्याय को अनंत परिणाम करि भेद करना। एक वस्तु की अस्ति विधिकरि अरु अविधि नास्तिकरि भेद करना। एक वस्तुकौं द्रव्य, सत्व, पदार्थ, गुणी, पर्यायी, अन्वयी, अर्थ, नित्य ऐसे २ नामभेद करना। एक जीवका आत्मा, परमात्मा, ज्ञानी, सम्यक्त्वी चारित्री, सुखी, वीर्जि (वीर्य धारी) दर्शनी, सिद्धवत् चेतन, चिदानन्द, चित्-दर्शन-ज्ञान-चारित्र, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सुखी, मतिज्ञानी, श्रुत-

---

१ देहली वाली प्रतिमें यह पंक्ति अधिक है।

ज्ञानी यौंकरि नाम भेद करना। ज्ञान, बोध, जत्ति[1] (ज्ञप्ति) सम्यक्त्व, आस्तिक्य, श्रद्धान-नियत-प्रतीति-यत् तत् (वह) एतत् (यह), एवं चारित्र, आचरण, स्थिर-विश्राम, समाधि, संजम. संयम, एकान्तमग्न, स्थगितअनुभवनु, प्रवर्तन, सुख, आनन्द, रस, स्वाद, भोग, तृप्ति, संतोष, वीर्यबल, वीर्यशक्ति, उपादान, तेज, उज (ओज), एक अशुद्धकौ विकार विभाव अशुद्ध समल परभाव संसार आस्रव रंजक भाव क्षणभंग भ्रम एवं अन्यत् एककौं यौं नाम ही करि भेद करना।

एक ज्ञानकौं मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय, केवल पर्यायकरि भेद करना। एवमन्यत् (इसी प्रकार और भेद करना)। ज्ञान दर्शन चारित्रादि एक-एककौं कतिपय, थोड़ा, जघन्य, उत्कृष्टकरि परिनति भेद करना। एककौं अनेकका भेद करना। एक वस्तुकौं निश्चय-व्यवहार परणति भेद करना। ऐसे२ करि एक का भेद करना, ते सर्व (वे सब) भेद भाव व्यवहार नाम पावै।

गुणबंध्या-गुणमोक्ष, द्रव्यबंध्या-द्रव्यमोक्ष ऐसे २ सर्व भावहिकौं भी व्यवहार कहिये। अवरु विकार, कालभावके वशतैं स्वभाव छोड़िकरि द्रव्य-गुन-

[1] चिद्विलास में इस स्थान पर 'ज्ञप्ति' है।

पर्यायहिकौं अवरु ही भाव कहियै । ज्ञानीकौं अज्ञानी, सम्यक्त्वीकौं मिथ्यात्वी, स्वसमयीकौं परसमयी, सुखीकौं दुखी, अनंतज्ञान-दर्शन-चारित्र सुखवीर्येहि कौं कतिपयकरि कहियै ।

ज्ञानकौं अज्ञान, सम्यक्त्वकौं मिथ्यात्व, स्थिरकौं चपल, सुखकौं दुःख, उपादेयकौं हेय, अमूर्त्तिककौं मूर्त्तिक, परमशुद्धकौं अशुद्ध, एक प्रदेशी पुद्गलकौं बहुप्रदेशी, पुद्गलकौं कर्मत्व, एक चेतनरूप जीवकौं मार्गणा-गुणस्थानादि जावंत परिणतिकरि निरूपना । अवरु एक जीवकौं पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, बंध, मोक्ष परिनति करि निरूपना । अवरु जावंत वचनपिंडकारि कथन, सौ सर्व व्यवहार जानना । अवरु आतमास्यौं जु अवरु (आत्मा से भिन्न) सो सर्व व्यवहार कहिये । ऐसे २ स्वभावस्यौं जु अवरु भाव देखिए जानिए, ते सर्व व्यवहार नांव पावै । अवरु एक सामान्यसौं समुच्चयसौं व्यवहारका इतना अर्थ जाननां, इतनांई (इतनाही) व्यवहार जानना—"जो भाव अव्यापकरूप संबंध वस्तुस्यौं व्याप्य-व्यापक एकमेक संबंध नांही, सु (सो) व्यवहार नाम पावै" ऐसा व्यवहार भावका कथन द्वादशांगविषै चलै है, सो जानना ॥ इति व्यवहारः ॥

निश्चय लक्षण

गाथा

जेसिं गुणाणं पचयं, णियसहावं च अभेवभावं च। दव्वपरिणमनाधीनं, तं णिच्छय भणियं ववहारेण ॥ ९ ॥

येषां गुणानां प्रचयं, निजस्वभावं च अभेद भावं च। द्रव्यपरिणमनाधीनं, तं निश्चयं भणितं व्यवहारेण ॥ ६ ॥

येषां गुणानां प्रचयं एकसमूहं तं निश्चयं। पुनः येषां द्रव्य-गुण-पर्यायाणां निजस्वभावं निजजातिस्वरूपं तं निश्चयं। पुनः येषां द्रव्य-गुणानां गुणशक्तिपर्यायाणां यं अभेदभासं एकप्रकाशं तं निश्चयं। पुनर्येषां द्रव्याणां यं द्रव्यपरिणामनाधीनं तस्य द्रव्यस्य परिणाम आश्रयं भावं तं निश्चयं, एतादृशं निश्चयं व्यवहारेण वचनद्वारेण भणितं वर्णितं।

अर्थ—जिन-जिन निज अनन्तगुण ही का जु आपस विषै एक ही समूह-पुंज सो निश्चयका रूप [का] जानना। अवरु निज निज द्रव्य गुण पर्याय ही की जु निज केवल जातिस्वरूप सो भी निश्चयका रूप जानना। जिन एक द्रव्यके अनन्त-

गुणहीकौं एक गुणही की अनन्तशक्ति-पर्याय हीकौं जु एक ही स्वरूपकरि भाव प्रगट होही है, सो भी निश्चय भाव जानना। अवरु जिस द्रव्य ही कौं, जु द्रव्य-परिणाम ही के परिणमनेके आधीन उस भावकौं, उस ही द्रव्यके परिणाम परिणमैं, अवरु परिणाम न परिणमे सो निश्चय जानना। ऐसे २ भावहिकौं निश्चयसंज्ञा कही वचनद्वारकरि।

भावार्थ—भो संत ! जु ए (जो ये) निज-निज अनंतगुण मिलि भया एक पिंडभाव-एक संबन्ध सो गुणहिका पुंज कहिये, तिस गुणपुंजकौं "वस्तु" ऐसा नाम कहिये। सो यहु वस्तुत्व नाम गुणहिके पुंज बिनु (बिना) अवरु कौंन कहिये ? इस गुण पुंजकौं वस्तु कहिए। सो इस वस्तुत्वकौं निश्चय संज्ञा जाननी।

अवरु जो-जो जिस-जिस रूप धरै जु-जु गुण उपज्या है, सो-सो अपना २ रूप धरै, गुण अवरु गुणतैं हि अपना जुदारूप अनादिअनंत रहै है, ऐसा जो जुदारूप सो निज जाति कहिये। आप ही आप अनादिनिधन है। सो रूप किसी अवरु रूपस्यौं न मिलै। अवरु जो रूप सोई गुण, जो गुण सोई रूप ऐसा जो तादात्म्य

लक्षण; अवरु जो कोई तिस रूपकी नास्ति चिंतवै तो गुणकी नास्ति चिंतवी तिन, ऐसा जु है आप ही आप रूप, तिस रूपकौं निजजातिस्वभाव कहिए। ऐसे निज रूपकौं निश्चयसंज्ञा कहिये।

पुनः अनंतगुणहिका एक पुंजभाव देखिये अवरु जुदे न देखिये, पुनः अनंतशक्ति ही करि जु है गुण तिस एक गुणहिकौं देखिये, तिन शक्ति ही कौं (उन पर्यायोंको) न देखिये, अवरु जघन्य उत्कृष्ट भेद न देखिये, ऐसा जु है अभेददर्शन-एक ही रूपका दर्शन-सो भी अभेददर्शन निश्चय संज्ञा कहिये।

पुनः, भो संत ! गुणके पुंजविषै तो कोई गुण तो नाहीं, इह (यह) तो निस्संदेह है, यौं ही है। परन्तु तिस भावका तिन गुणहि का परिणाम धरै परणवै है, सो भाव तिन गुण परिणामहि सौं जुदा नांही तिसी भाव भरा परणवै है सो कहां पाइए ?

जैसैं पुद्गल वस्तुविषै तो स्कंध कर्मविकार कोई गुण तो नांही, परन्तु तिस पुद्गल वस्तुके परिणाम तिस (उसके) स्कंध कर्म विकार-भावकौं स्वांग धरै परिणवै है। अवरु द्रव्यके परिणाम इस

कर्मविकार भावकौं धरि परिनमै, यहु एक पुद्गल ही स्वांग धरि वर्त्तै (है) निस्संदेह। पुनः इस जीव वस्तु के परिणाम रंजक, संकोच, विस्तार, अज्ञान, मिथ्यादर्शन, अविरतादि चेतनाविकारभाव भए परिणवै है. सो ऐसा चेतनविकार भाव जानना। अवरु तिस चेतनद्रव्यके परिणाम हि विषै तो पाइए हैं, न कबहुं अचेतन द्रव्य के परिणाम हि "विषैं" पाइए हैं यहु निस्संदेह है। सौ ऐसे जु है विकार भाव अपनेंई अपने द्रव्य परिणामहि विषै होइ, तिसी-तिसी द्रव्य परिणामाश्रित पाईए, सो भी निश्चयसंज्ञा नाम पावै। इति निश्चय।

चकारात् (चकार से)अवरु भी निश्चय भाव जानने। जेतेक निजवस्तुकी परिमिति (दायरा) तेतीक परिमिति ही विषै द्रव्य, गुण, पर्यायहिका व्याप्य-व्यापक होहि (होकर) वर्त्तै है (वर्तता है) तिस वस्तुपरिमितिस्यौं वाहिर नांही व्याप्यव्यापक होइ, अपनी अपनी सत्ता कै विषै व्याप्य-व्यापक होइ अनादिअनन्त रहै है, यहु भी निश्चय कहिए। अवरु जो भाव जिस भाव का प्रतिपक्षी वैरी सो तिसीकौं वैर करै. अवरकौं न करै सो भी निश्चय जानना। अवरु जो प्रतिज्ञा कीजै-नेम

कीजै-सो भी निश्चय कहिये। अवरु जो जिस कालविषै जैसी जो होनी है त्यौं ही जु होइ, सो भी निश्चय कहिये। अवरु जिस जिस भाव की जैसी २ रीति करि प्रवर्त्तना है तिसी तिसी रीति पाय परिनवै सो भी निश्चय कहिये। अवरु एक आपकौं-स्वद्रव्यकौं-भी निश्चय नाम है।

---

१ जं जस्स जम्मिदेसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा ॥ ३२१ ॥
तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि।
को सक्कइ चालेदुं इंदो वा अह जिणिंदो वा ॥ ३२२ ॥

भावार्थ—जो जिस जीवकै जिस देशविषै जिसकालविषै जिस विधानकरि जन्म तथा मरण उपलक्षणतैं दुःख सुख रोग दारिद्र आदि सर्वज्ञ देवनैं जाण्या है जो ऐसैं ही नियमकरि होयगा, सो ही तिस प्राणीके तिस ही देशमें तिसही कालमें तिस ही विधानकरि नियमतैं होय है, ताकूं इन्द्र तथा जिनेन्द्र तीर्थंकर देव कोई भी निवारि नाहीं सकै है।

॥ स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा ॥

जो जो देख्यो वीतराग ने सो सो होसी वीरा रे।
बिन देख्यो होसी नहिं क्यों ही, काहे होत अधीरा रे।१।
समयो एक बढै नहिं घटसी, जो सुखदुख की पीरा रै।
तू क्यों सोच करै मन कूडो, होय वज्र ज्यों हीरा रे।२।

॥ ब्रह्मविलास, परमार्थपद पंक्ति २२ वां राग माठ ॥

२ जोधपुर वाली प्रति में यह पंक्ति अधिक है।

अवरु एक है, एक रूपगुण मुख्य लीजै, तव अवरु सर्व अनन्त निजगुणरूप जु है ते (वे) गुण रूपके भाव होइ है।

भावार्थ—कहनेकौं[1] तो एक जुदारूप लेइकरि कहिए हैं–परन्तु सो ही एक गुणरूप है, सोई सर्वरस कौं है। अवरु जो कोई यौं ही मानैं-एक रूप विषै अवरु रूप नांही, एक ही है, तहां अनर्थ[2] उपजै। जैसैं एक ज्ञानगुण है, तिस ज्ञानविषै अवरु नांही, तो तिन पुरुष सो ज्ञान, चेतनरहित, अस्तित्व, वस्तुत्व, जीवत्व, अमूर्त्तादि सर्व रहित मान्या, सो तो मानौं; परंतु सो ज्ञानगुण कैसैं रह्या? क्यौं करि रह्या? सो न रहा। तिसतैं इहां इह बात सिद्ध भई-एक एक गुणरूप जु है सो सर्व स्वरस है, ऐसैं सर्व स्वरस भी निश्चय कहिये।

अवरु कोई द्रव्य किसी द्रव्यस्यौं न मिलै, कोई गुण किसी गुणस्यौं न मिलै, कोई पर्यायशक्ति किसी पर्यायशक्तिस्यौं न मिलै, ऐसे जु अमिल भाव सो भी निश्चय कहिए।

निश्चय का सामान्यअर्थस्यौं इतना कहिए-संक्षेपस्यूं (संक्षेपसे) इतना ही अर्थ जानना-"निज

---

१. जोधपुर वाली प्रतिमें यह पंक्ति अधिक है। २. जोधपुर वाली प्रति में 'अर्थ न' ऐसा पाठ है।

वस्तुस्यौं जु भाव व्याप्य-व्यापक एकमेक सम्बन्ध सो निश्चय जानना।" कर्त्ता भेद विषै, कर्मभेद विषै भी, क्रियाभेद विषै भी, इन तीनौ भेदविषै एक ही भाव देखिये-ए (ये) तीनौं एक भाव के निपजे, ऐसा एक भाव भी निश्चय कहिये। स्वभावगुप्त है वा प्रगट परणमै है, पै नास्ति तो नांही सो ऐसा अस्तित्वभाव निश्चय कहिये। ऐसे २ भावहिकौं निश्चयसंज्ञा जाननी, जिनागम विषै कही है ॥ इति निश्चय संपूर्णम् ॥

साक्षात् धर्म

गाथा

गुण णियसहावं खलु पज्जायससहावदव्वं च। अप्पा किल परमप्प धम्मं, तं धम्मवायं हि बोधव्वा ॥ १० ॥

गुण निज स्वभावं खलु, पर्यायस्वस्वभावं स्वभाव द्रव्यं च। आत्मा किल परमात्म धर्म्मं तं धर्म्म-वादं हि ज्ञातव्याः ॥

खलु निश्चयेन आत्मा किल सर्वथा अनंतगुण निजस्वभावं-निजजातिस्वरूपं—यं यातं तं परमात्मधर्म्मं उत्कृष्टकेवलरूपं, पुनः आत्मा सर्वथा पर्याय स्वस्वभावं यं यातं तं परमात्मधर्मं उत्कृष्ट-

स्वभावं पुनः आत्मा सर्वथा स्वभावद्रव्यं यं याते तं परमात्मधर्मं उत्कृष्ट स्वभावं, एतादृशं उत्कृष्टभावं तं जिनसमये धर्म्मवादं-स्वभावरूपकथनं-हि यथा स्यात्तया ज्ञातव्याः ।

अर्थ—निश्चयकरि आत्माके अनन्त गुण जब सर्वथा अपने निजजातिरूपकौं भए, तब आत्माकौं परमस्वभाव कहिये। वहुस्यौं (उसके द्वारा) आत्माकी सर्वथा षड्गुनी हानिवृद्धिकरि पर्यायसौं निज जातिरूप उपजी तब आत्माकौं परमस्वभाव कहिए। अवरु जब जब आत्माका द्रव्य, प्रदेशनि करि निःप्रकंप निजस्वभावकौं सर्वथा उपज्या, सो तब आत्माकौं परमस्वभाव कहिये। ऐसे केवल सर्वथा द्रव्य गुण पर्याय स्वभाव रूपकौं ही भए। ऐसा भावका कथन जिनागमविषै जानना।

भावार्थ—अनादितैं (अनादिकालसे) पुद्गल निमित्त पाइकरि इस आत्माके ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, आत्मा, आचरण, वीर्य, आत्मा भोगादि गुण; अज्ञान, अदर्शन, मिथ्यात्व, अचल, पराचरण-परजोगादि ऐसे विकार परभावरूप भए भी ज्यौं ज्यौं काललब्धि पायकरि सो परभाव क्षय होता चल्या स्वभाव प्रगट होता चल्या, यौं

होते-होते जिस कालविषै सो परभाव सर्वथा विलय (नाश) होय गया; तिसी समयके विषैं सर्वथा अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंत-वीर्यादि अनंतगुण निजरूप करि केवल प्रगटे-सर्वथा अपनेंई रूप भए-अन्यथा रूप नाश होय गया-सर्वथा जो साक्षात् गुणहिका निजरूप ही रह्या, अवरु कथंचित् अन्यका लगाव गया, साक्षात् निजजातिरूप भया सो ऐसा आत्माका परमभाव गुणही का जानना। अवरु तिसी काल तिन ही साक्षात् गुणही की परणमन-पर्याय एक समय सूक्ष्मविषै षट्गुनी हानिवृद्धिसौं स्वस्वरूप भई, सो पर्याय साक्षात् केवलरूप उपजी। ऐसी षट्-गुनी हानिवृद्धि सूक्ष्म पर्यायका स्वस्वरूप सो भी आत्माका परमभाव कहिये।

अवरु जब जीवद्रव्यके प्रदेशनिका कायादि योग पुद्गल वर्गणा (के) उठतैं-बैठतेंके निमित्तसूं संकोच-विस्तार रूप कंप होय था, अवरु जब वै कायादि पुद्गलवर्गणा नास्ति भई सर्वथाकरि, तब जीव द्रव्यके प्रदेश (का) वज्रवत् निष्कंपस्वभाव सर्वथा साक्षात् हुवा, ऐसाभी आत्माका परमभाव जानना। ऐसे तीन्यौं द्रव्य, गुण पर्याय निष्कल (सम्पूर्ण) सर्वथा साक्षात् परमस्वरूपकौं भए, तब

इस आत्माके धर्म्म निजस्वभाव ही केवल होइ। एक-सर्वथा-निजजाति केवल एकस्वरूप रूप प्रवर्तना है, तिसतैं इस आत्माकौं धर्म्म अइसाई (ऐसा ही) कहिए है। क्यौं (कि) तहां तिस काल विषै निज ही रूप है, अवरु किछु भाव नांही। तिसतैं 'धर्म्म' ऐसा आत्मा कहिए। सो अइसा साक्षात् धर्म्मका कथन जिनागमविषै जानना।
॥ इति साक्षात् धर्मः ॥

बहिर्धर्म[1]

गाथा

जत्थगुणविभावंसिय पज्जायविभावं च
दव्वविभावं च, अप्पा किल वहि धम्मं,
पुणो तं अधम्मवायं णायव्वा ॥ १० ॥

यत्र गुण विभावं स्यात, पर्याय विभावं च द्रव्य-विभावं च। आत्मा किल वहि धर्म्म पुनः तं अधर्मवादं ज्ञातव्यः ॥

यत्र यस्मिन् काले आत्मा गुणविभावं गुणविकारं यं किल सर्वथा स्यात् तं वहि धर्म्म, पुनः आत्मा पर्यायविभावं यं किल सर्वथा स्यात् तं वहि धर्म्म, पुनः आत्मा द्रव्यविभावं यं किल सर्वथा स्यात्

1—'बहिर्धर्म पुनः सोऽधर्मवादो ज्ञातव्यः, ऐसा होना चाहिये।

तं वहि धर्म्मं, एतादृशं वहि धर्म्मं अधर्म्मवादं-अस्वभाववादं-परस्वभावकथनं जिनागमे ज्ञातव्यः।

अर्थ—जिस कालके विषैं आत्मा के गुण परभावकौं सर्वथा होइ, तिस कालके विषै आत्मा कौं वहिरस्वभाव कहिए। जिस कालके विषै आत्माकी पर्याय विकारकौं सर्वथा होइ तिस काल के विषै इस आत्माकौं वहिर्धर्म्म कहिए। अवरु जिस कालके विषै आत्माका द्रव्य विकार (रूप) सर्वथा (परिणमन) होइ तिस कालके विषै इस आत्माकौ वहिरधर्म्म कहिए। ऐसा अधर्मकथन जिनागमविषै जानना।

भावार्थ—अज्ञान, अदर्शन, मिथ्यात्व, पराचरण, अवीर्य, पररसभोग इत्यादि जु है गुणहिका विकारभाव, एक अक्षरका अनंताभागकौं विकार छोड़ि करि अवरु सर्वथा विकाररूप भया, तिसी विकार भावरूप सर्वथा गुण होइ, स्वभावरूपकौं किछु भी नहीं। सो ऐसा जु है सर्वथा गुणविभाव सो वहिर्धर्म्म कहिए। अवरु जो गुण ही विकाररूप सर्वथा भए, तो तिनका परनाम (परिणाम) परनमन (परिणमन) भाव सहज ही विकाररूप सर्वथा भए। जैसैं पानी रंग्या गया तो तिसकी

लहर रंगीन सहज ही भई। जो ऐसी विकारपर्याय सो स्थूलपर्याय कहिए। सो विकारपरिणमन इन्द्रीज्ञानकरि किछु जान्यां जाइ है। सो क्या है?

घनैं काल लगु (तक) तिस एक विकार भावके परिनाम बण्या करै है (प्रवाहित होते रहते हैं), तिस स्थूल कालके वहनेसौं जान्या जाइ है। अइसी जु है विकार गुणही की विकार स्थूल पर्याय सर्वथा, सो भी आत्माकौं वहिर स्वभाव है। अरु जब गुणपर्याय सर्वथा विकाररूप भए, तब द्रव्य तो आपु ही विकाररूप सर्वथा आया। जैसैं ज्यौं तंतु रंगीन सर्व भए तो पट (कपड़ा) सर्वथा सहजही रंगीन भया, किछु तंतुस्यौं पट जुदा न था। सो तो तंतु ही के मिलापकौं पट कहिये है। ऐसे द्रव्य सर्वथा विकार भया तब, सो आत्माकौं वहिर भाव कहिए। ऐसा जु है द्रव्य-गुण-पर्याय सर्वथा विकाररूप सो वहिर स्वभाव आत्माका कहिये। क्यौं (कि) किछु अपनी वस्तु-विषै भाव होता नाही है। पइ (परन्तु) अवर ही परभाव-विकार भाव-वस्तु समुदायस्यौं वाहरिका ऊपरीभाव भया है, तिसतैं वहिःधर्म्म इसकौं कहिये। अवरु यहु आत्मधर्म्म नाही, तिसतैं इसकौं आत्मा का अधर्म्मभाव कहिए॥ इति वहिरधर्म्मः॥ १०॥

मिश्रधर्मकथन

गाथा

गुण धम्माधम्मं परिणमदि, दव्व पज्जायं च धम्माधम्मं फुड। मिस्सधम्मं जया अप्पा, तं मिस्सधम्मं भणइ जिणो ॥११॥

गुंण धर्माधर्मं परिनमति, द्रव्यं पर्यायं च धर्माधर्मं स्फुटं। मिश्र धर्मं यदा आत्मानं मिश्र-धर्मं भनति जिना ॥ ११ ॥

यदा यस्मिन् काले स्फुटं प्रगटं आत्मा गुण[1] धर्माधर्मं परिणामति, गुणस्वभाव (गुणस्वभावो) विभावं परिणमति यं तं मिश्रं धर्म्मं विकार-कलङ्कनिजस्वभावं, पुनः तदा आत्मपर्यायं द्रव्यं धर्माधर्म्मं सहजेन आयातं तं मिश्रधर्म्मं एतादृशं मिश्रधर्म्मं जिनो भणति कथयति।

अर्थ—जिस कालके विषै आत्माके गुण धर्माधर्मकौं परिणमै है, तिस काल विषै प्रगट आत्माकौं मिश्रधर्म कहिए। अवरु जब आत्माका गुण मिश्रधर्म रूप भए तब आत्माको पर्याय द्रव्य रूप तो सहज ही मिश्रधर्म रूपको भए, अइसा जु है मिश्रधर्म आत्माका जिन ने प्रगट कहृया है।

---

१. गुणो २. यह पंक्ति देहली वाली प्रति में नहीं है।

भावार्थ—जब आसन्न भव्वी (निकट भव्य) काललब्धि पाइ करि जु जीव मिथ्यात्व पर भेष धर्या प्रवर्त्तै था, सो प्रवर्त्तना पूरा भया। तिस ही काल निज स्वाभावीक स्वरूपकरि व्यक्तरूप प्रवर्त्त्या। सोई भव्वि जीव सो निजरूप क्या प्रगट भया? सो कहिये हैः—

जो एक जीवका सम्यक्त्व गुण तिसका आस्तिक्य लक्षण, आस्तिक्य कहिये-प्रतीति-दृढ़ता, इह बात यौं ही करि है, हलचल यासैं नांही, ऐसी आस्तिक्य शक्ति (है)। तिस आस्तिक्य शक्ति के दोइ भाव होइ है- एक निजजाति भाव है, एक उपाधीकविकारदोषरूप, निजजातिसौं (न्यारा) अवरु सो ऐसा परभाव है। तिस आस्तिक्य शक्तिकैं अनादिस्यौं (निज) जातिभाव तो गुप्त भया। सो परभावका भेष प्रगट होइकारि आस्तिक्य शक्ति प्रवर्ती, सो परभावरूप धरै। आस्तिक्य शक्ति कैसी है?

जे भ्रम है, झूठ है, जे मिथ्या है जे कुछु बात, इनिही तिनिहीकी ठीकतारूप प्रवर्तै है, तिनहीकौं आस्तिक्य कहै है, ऐसा आस्तिक्यकै परभाव जु रहइ है, सो पुद्गलके कर्मविकारके रहनेस्यौं रहै है। अवरु यौंही यौंही क्रम प्रवर्तते पुद्गलविपाक (की)

नास्तिकी काललब्धि आई तब पुद्गलविपाक तो नाश भया, तो तब ही तिसीकाल आस्तिक्य शक्तिका परभाव प्रवर्त्तना नाश भया। क्योंकि ज्यौं ज्यौं पुद्गल मिथ्यात्व विपाकका नाश भया, त्यौं वह परभाव तो इस विपाकके रहने से रहे था अवरु वह तो गया, तिसतैं इसका तो सहज ही नाश भया। तब ही तिसी काल आस्तिक्य शक्तिका परभावका यौंकरि नाश भया। तिसी काल आस्तिक्य शक्तिका जो निज जातिभाव गुप्त [रूप] शक्तिरूप होइ रह्या था, सोई जाति भाव व्यक्त प्रगट भया अतिशयकरि। सोई जातिभावका कैसा है रूप ?

जो निज वस्तु जातिकी, निश्चय वस्तुगुण पर्यायनकौं, प्रत्यक्ष सत्तारूप अवरु पर द्रव्य-गुण पर्यायनिकी जुदी प्रत्यक्ष सत्यरूप ठीकता ऐसी आस्तिक्य शक्ति का जातिभाव है सो नित्य ही है। ऐसी एक सम्यक्त्वगुणकी आस्तिक्य शक्ति निजरूप परनमी, अवरु तिस ही काल विषै तिस आसन्न भविजीवकौं एक ज्ञान-गुण (करि जानना होता है) तिस ज्ञानगुणका लक्षण जानना।

तिस जाननेंके भी दोय भाव-एक तो वैभाविकरूप विकाररूप-उपाधिरूप-परभाव, एक निजजाति-

रूप-अपनेरूप-स्वभाव भाव। वहु जु सुभाव भाव था जाननेका, सो तो अनादिसौं शक्तिरूप गुप्त होइ रह्या था, अवरु तिस दूसरे परभावकरि जानना व्यक्त प्रगट रूप भया, सोई परभाव धरै। कैसा जानना होइ है ?

अवस्तुकौं वस्तु, अवगुणकौं गुण, अपर्यायकौं पर्याय, परकौं स्व, हेयकौं उपादेय इत्यादि जे कछु बातैं नहीं हैं मिथ्यामति ही जाननैंकौं प्रवर्त्तै है, ऐसा जाननेका परभाव. सो परभाव पुद्गल आवरण विपाकके रहनेसौं रहै है। अवरु यौंही यौंही अनादिस्यौं प्रवर्त्तते २, अवरु तिस दुष्ट पुद्गल आवरणका कछु विपाक उदय (का) नाश काल आया, तिस आएतैं नाश हुआ कछु विपाक, तिसके नाश हौंने तैं वहु जु दुष्ट कुत्सित परभाव था जाननेंका, सो तिसही काल नाश भया। तब ही कछु जाननेंका निज-जाति स्वभाव भाव, सो व्यक्ति-प्रगटरूप-करि परनम्यां। सो कैसा प्रगटया ?

जीवहीकी निजजाति वस्तुगुण पर्यायहि की सत्य प्रत्यक्ष स्वजाति जीव जानी, वा ज्ञायक जानी वा दर्शन जानी, वा उपयोग मई जानी, चेतना जानी, वा वेदक (अनुभवन रूप) जानी, वा बुद्ध जानी, वा शांतमई जानी, ऐसी तो जीवकी निजजाति नित्य यहु जानी। अवरु सर्व पर-

भावहिकी, अवरु पंच द्रव्य-गुण-पर्यायनि की सत्य प्रतक्ष अजीवजाति जानी, वा अज्ञायक जानी, वा अदर्शनमई जाति जानी, वा उपयोग रहित जाति जानी है, वा अचेतन जाति जानैं है ऐसी नित्यजाति परभावहि की (जानी)।

अवरु धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, पंच वस्तु हि की अजीव जाति जानी, अवरु वस्तु-भाव जुदा जान्यां, अवस्तुभाव जुदा जान्यां, यथार्थ जुदा जान्यां। आप आपनी जीव निज जाति सत्ता भिन्न जानै है, परजीव- अजीव सत्ता भिन्न जानै है, मिथ्यात जुदा जान्या, जथार्थ जुदा जान्या, मिथ्यार्थ जुदा जानैं है, सोई ज्ञानगुण की निज जाति भाव शक्ति किछु सम्यग् ऐसी परनमी-अइसी प्रगट भई, अवरु तिसी काल विषै तिस आसन्न भवि जीवकौं एक चारित्र गुन, तिस चारित्र गुणका लक्षण-आचरण-प्रवर्तना सी (होय है)।

तिस आचरणके दोय भाव-एक तो विभाव-रूप-उपाधिरूप-विकाररूपपरभाव, दूसरा निज जातिरूप-अपनारूप-स्वभावरूप ते स्वभावभाव, वहु जु आचरणका स्वभाव था सो तो अनादितैं शक्तिरूप गुप्त होइ रह्या था, अवरु सो दूसरा

परभाव करि आचरण प्रगट होइ प्रवर्त्त्यौ। सोई आचरण परभाव धरै। सो कैसा प्रगट्या है ?

[1]क्रोधरूप आचरण, मान-माया-लोभ आचरन, हास्य-रति-अरति-शोक-भय-दुर्गंछा (जुगुप्सा) स्त्रीवेद-नपुंसकवेद-पुंवेदादिरूप आचरण। रंजक-रागरूप-पुद्गल परभावहि विषैं चंचलरूप-विश्राम स्थिति (रूप)-प्रवर्त्तना, सोई परभाव-रूप आचरण है। सोई ऐसा आचरन पररूप है चारित्रमोह कर्मके विपाकके रहनेस्यौं रहै है। अवरु यौंही यौंही प्रवर्त्तते २ काललब्धि पाई, कछु चारित्रमोह कर्मका विपाक नाश भया, तब वहु, कि कुत्सित आचरण परभावरूप नाश भया। वहु जु अनादिनैं आचरनका निजजातिरूप-स्व-भावशक्तिरूप- स्वभावभावशक्तिरूप-गुप्ति होइ रह्या था. सो भाव तब ही कछु व्यक्तिरूप होइ प्रगटरूप परनम्या। सो कैसा प्रगट्या है ?

जो नित्य एक जातिरूप स्वजीव वस्तु-स्वभाव, तिस निजस्वभाव वस्तु मध्यविषै स्थिररूप करि विश्राम-समाधि-स्थिति-आचरण-प्रवर्तना परनम्यां, केवल निज वस्तु सुखकौं स्वादना परिनम्यां, ऐसा आचरण निज जातिरूप स्वभाव परिणम्या

1, यह पूरा पैराग्राफ जोधपुर वाली प्रतिमें नहीं है।

व्यक्त भया, जिस कालकै विषै भव्वी (भव्यजीव) कै, ए (ये) मुख्य तीनौं गुण स्वभाव भावरूप यौं करि परिनवैं। अभेदकरि सो वस्तुही स्वभावकौं परनमी। यहु वस्तुका निजजाति स्वभावभाव तो, कुत्सित विपाकभाव रंगरहित दैदीप्यमान है-प्रगट है- तिसस्यौं इसकौं वीतरागभाव कहिये। अवरु वहु परभाव जु है सो परभाव पुद्गल-विपाक रंगभावना पडत्थंदा करि व्याप्या है। तिस पुद्गल रंग पडत्थंदा विनाससौं किछु ही नांही। तिसतैं जैसे २ जावंत पुद्गल विपाकभाव कालपाइ प्रगट्यो है, तिन ही तिन ही अनुसारइ पुद्गलविपाक भांति (विविधपनां) की ज्यौं इस चित् परभावके रूपकी भांति (विविधपनां) होइ है। अवरु जोई पुद्गल विपाककी भांतिका नाश होइ है, सोई सोई भांतिका चित् परभाव भी नाश होइ सही, तिसतैं यहु तात्पर्य-तिस पुद्गल विपाककी अस्तित्वस्यौं इस परभावकी अस्तित्व (है)। (और) वहुस्यौं तिस पुद्गलकर्म विपाककी घनी-थोरी अस्ति नास्ति जाननी, तैसी परभावकी घनी-थोरी अस्तिनास्ति जाननी। तिसतैं परभावका रहना पुद्गलकर्म विपाकके

आधीन है। अवरु तिसतैं इस परभावकी भांति केवल पुद्गलकर्म विपाकरंगकी भांतिस्यौं भांति है, तिसतैं परभाव सरागमय है। अवरु वहु निज जाति-जीव वस्तु स्वभावभाव-निज वस्तु-सत्ता (के) आधीन है। सो आपु ही वस्तुभाव है सोई स्वभावभावका, पुद्गल कर्मविपाक (के) नासस्यौं प्रवर्त्तना है-प्रगटनां है। तिसतैं स्वभाव-भाव, पुद्गलकर्मविपाक रंगस्यौं सहज ही रहत (रहित) है। तिसतैं स्वभावकौं एक वीतराग, यह्न भी नांव पायो, सो आसन्न भव्वीकै प्रगट परन-स्यां स्वभाव भाव (है)।

भावार्थ—ज्यौं अनादितैं जीवपरनति अशुद्ध होय रही है, त्यौं ही कहिये हैं-अनादितैं पुद्गल तो निमित्त भया जीवकी चित् विकार-परिणति होने कौं, फिर वहु चित् विकार परिणति परनमति (परिणमन करती हुई) तिस पुद्गलकौं कर्मत्व पर-नाम हवनैंकौ निमित्त होइ है। यौं (इसप्रकार) अनादितैं निमित्त नैमित्तिक परस्पर होय रहे हैं। सो इहांकै विषै जीवकी परणतिका व्याख्यान कीजै है:—

जब यहु पुद्गल कर्मत्वउदय परिणतिकौं परनरूयां सहज ही अपनी द्रव्यशक्ति करि, तब ही

व्यक्त भया, जिस कालकै विषै भव्वी (भव्यजीव) कै, ए (ये) मुख्य तीनौं गुण स्वभाव भावरूप यौं करि परिनवैं। अभेदकरि सो वस्तुही स्वभावकौं परनमी। यहु वस्तुका निजजाति स्वभावभाव तो, कुत्सित विपाकभाव रंगरहित दैदीप्यमान है-प्रगट है- तिसस्यौं इसकौं वीतरागभाव कहिये। अवरु यहु परभाव जु है सो परभाव पुद्गल-विपाक रंगभावना पडत्थंदा करि व्याप्या है। तिस पुद्गल रंग पडत्थंदा विनाससौं किछु ही नांही। तिसतैं जैसे २ जावंत पुद्गल विपाकभाव कालपाइ प्रगट्यो है, तिन ही तिन ही अनुसारइ पुद्गलविपाक भांति (विविधपनां) की ज्यौं इस चित् परभावके रूपकी भांति (विविधपनां) होइ है। अवरु जोई पुद्गल विपाककी भांतिका नाश होइ है, सोई सोई भांतिका चित् परभाव भी नाश होइ सही, तिसतैं यहु तात्पर्य-लिसं पुद्गल विपाककी अस्तित्वस्यौं इस परभावकी अस्ति-त्व (है)। (और) वहुस्यौं तिस पुद्गलकर्म विपाककी घनी-थोरी अस्ति नास्ति जाननी, तैसी परभावकी घनी-थोरी अस्तिनास्ति जाननी। तिसतैं परभावका रहना पुद्गलकर्म विपाकके

आधीन है। अवरु तिसतैं इस परभावकी भांति केवल पुद्गलकर्म विपाकरंगकी भांतिस्यौं भांति है, तिसतैं परभाव सरागमय है। अवरु वहु निज जाति-जीव वस्तु स्वभावभाव-निज वस्तु-सत्ता (के) आधीन है। सो आपु ही वस्तुभाव है सोई स्वभावभावका, पुद्गल कर्मविपाक (के) नासस्यौं प्रवर्त्तना है-प्रगटना है। तिसतैं स्वभाव-भाव, पुद्गलकर्मविपाक रंगस्यौं सहज ही रहत (रहित) है। तिसतैं स्वभावकौं एक वीतराग, यहू भी नांव पायो, सो आसन्न भव्यीकै प्रगट परन-म्यां स्वभाव भाव (है)।

भावार्थ—ज्यौं अनादितैं जीवपरनति अशुद्ध होय रही है, त्यौं ही कहिये हैं-अनादितैं पुद्गल तो निमित्त भया जीवकी चित् विकार-परिणति होने कौं, फिर वहु चित् विकार परिणति परनमति (परिणमन करती हुई) तिस पुद्गलकौं कर्मत्व पर-नाम हवनैंकौ निमित्त होइ है। यौं (इसप्रकार) अनादितैं निमित्त नैमित्तिक परस्पर होय रहे हैं। सो इहांकै विषै जीवकी परणतिका व्याख्यान कीजे है:—

जब यहु पुद्गल कर्मत्वउदय परिणतिकौं परनरुयां सहज ही अपनी द्रव्यशक्ति करि, तब ही

यहु जीव तिस पुद्गल कर्मत्वउदय परनति परननमेंके निमित्त पाइकरि यहु जीव आपु चित्विकार रूप होइ परनवैं है, । जैसैं लोक प्रातःविषै सूर्यका उदय पाइकरि अवरु आप ही लोक स्नान-वणिजादिक (व्यापारादिक) कार्यकौं करै है, तैसैं पुद्गल कर्मका उदयपरणति-पाइ करि जीव आपु ही विकारकौं परनवैं है । कोई जानैंगा-(कि) पुद्गल जीवकौं परनमावै है विकाररूप, सो यौं तो कवही हवनेंकी नांही । अवरु द्रव्य (अन्यद्रव्य) अवरु द्रव्यकी परनतिका कर्त्ता होय नहीं । अवरु कोई यौं जानैंगा (कि) चित्विकार तो जीव परिनमै है परन्तु यहु पुद्गल तिसके हवनेंकौं आपु निमित्त का कर्त्ता होइ है, ज्यौं यहु जीव विकाररूप परिनवैं तिसके लिये यहु पुद्गल आप निमित्तका कर्त्ता होइ प्रवर्त्या है. सो यौं तो कव ही हवनेंकी नांही । ज्यौं यौं हु पुद्गल तिस चित्विकार हवनें के लिये-जान जानकरि आप कर्म्म निमित्तरूप होइ है तो यहु पुद्गल ज्ञानवंत भया, तहां अनर्थ उपज्या । जु अचेतन थां सो चेतन हुवा, एक तो यहु दूषन । दूसरै, यहु पुद्गल कर्मकी कर्मत्वविभावता सो पुद्गलके आधीन होयगी पुद्गल स्वाधीन आपैं

आप कर्म विभावहि का कर्त्ता होइगा, निमित्त पाइकरि न कर्मका कर्त्ता होइ, तब विभाव-कर्मत्व पुद्गलका स्वभाव होइगा, यहु दूसरा दूषन।

अवरु तीसरैं (दूषण) यहु होइ-जो पुद्गल कर्मत्वं करि निमित्तकौं हुवा करै जीवकौं विकार हवनेके लिये, तौ यहू दूषन उपजै-जो कोई द्रव्य किसी द्रव्यका वैरी नांही होइ, तब इहां तो पुद्गल, जीवका वैरी हुवा। यहू तीसरा दूषन (है)।

बहुर्यौं (और) जो कोई यौं करि कहै, जीव तो विकाररूप नाही परनमता, (पुद्गल ही कर्म्मत्वरूप नानाभांति आप ही भया परनवै है सो यौं तो कबहूँ हवनेंकी नांही। क्यौं?

ज्यौं पुद्गल विकाररूप परनवै है त्यौं परनओ, परन्तु जीवकौं तो संसारभुक्ति हवनां तो न आया, ज्ञानी अज्ञानी हुआ कोई अवरदशा आई। सो तो अनर्थदशा (अन्य दशा) देखियेती (दीखती) नाही। अयरु संसारभुक्ति होते जीव परिनाम प्रतक्ष देखिये है, तब जीवकौं तो विकार आया।

अब जो कोई यौं कहे-(कि) जीव चित्‌विकाररूप आप तो नहीं परनमता, परन्तु पुद्गलस्यौं व्याप्य-व्यापक होइकरि परनवै है; सो यौं तो नांही। क्यों (कि) कोई द्रव्य किसी द्रव्यसूं व्या-

प्य-व्यापक नांही होइ। जो होइ, तो चेतन द्रव्य-का नाश होइ जाइ। एतत् अर्थ (यह कहनेका भाव है)।

अवरु जो कोई यौं कहै-पुद्गलसहकार निमित्त-तांई किछु नांही, जीव आपकौं आपही निमित्त होइकरि आपही चित्विकाररूप परिनवै है, सो यौं तो नांही। क्यों ?

ज्यौं पुद्गलकर्मत्व सहकारी निमित्त विना ही जीव चित्विकाररूप परनवै है, तो यह चित् विकार जीवका निज स्वभावभाव आया, स्वाधी-नशक्ति भई, निर्विकार निज स्वभावचेतना तिसका नाश आया। एतत् अनर्थ (यह दूषन आता है)।

अवरु जो कोई यौं कहै-जीव चित्विकार जो परिणमै है, सो पुद्गल कर्मत्व विकार हवनेके तांई, सो यौं तो नांही। क्यों? कोई द्रव्य किसी द्रव्यका वैरी नाही है। एवं निषेध (इस प्रकार निषेध है)।

अवरु ज्यौं कोई यौं कहै-जीव पुद्गल दोन्यौं मिलिकरि एक अशुद्ध-विकार-परिनति उपजी है, सो यौं तो नांही। क्यौं (कि) दोइ द्रव्य मिलि-करि एक परनतिकौं न हौंहि। एह (ऐसा माननेसे

दोय द्रव्यमैं हि कोई द्रव्य निःपरिणामी होइ (परंतु) इहां तो सर्व द्रव्य निज परिनामी (रहै हैं), चेतनकौं चेतन परिनाम, अचेतनके अचेतन परि-

नाम। एवं निषेधः (दोनों मिलकर एक अशुद्ध परिणति माननेका निषेध हुआ)।

अब ज्यौंकरि इन दोन्यौं विकारकी उत्पत्ति-रूप है, त्यों ही कहिये है-पुद्गल कर्मत्वविकार होने की ऐसी कथा है—

इस त्रिलोक विषै कार्माणजातिकी वर्गणा-स्कंध भरी है। जब जिस जीवके जैसी २ जातिका मंदतीव्रकरि चित्-विकार रागभाव होइ है, तिस काल तिसी जीवका राग-चिकनाई (का) निमित्त पाइकरि यथाजोग कर्म-वर्गणा, तिसी जीवके समीप आकाशप्रदेशनिकी (पुद्गल) वर्गणा, तिसी जीवके प्रदेशनिसौं एक क्षेत्रावगाहकरि चिंपैह हि (चिपके है), वा बंधे है। इहि भी बंधिकरि तहा वैइ (वह ही) कर्म-वर्गणा निज निज कर्मत्वकार्य (में) व्यक्त होइ करि परिणवैं है, उदयरूप होइ है। सो ऐसा चित् विकार राग, कर्मवर्गणाकौं कर्मत्व व्यक्तरूप नाना भांति परनमनेको निमित्त मात्र है। जैसैं दृष्टान्त-करि—

जैसैं किसीपुरुषके तैल लग्या गात है, तिस तैलका कारण पाइकरि अवरु धूलि तो मल है परंतु तिस तेलसौं बन्धकरि धूलि व्यक्तकरि मैल रूप परिणमैं है, तो भी वह पुरुष तिस मैलसों मैला, (होइ है) इहां ऐसा इतना ही द्रव्यकर्मत्व होनेका राग निमित्तका भाव जानना ।

अथ विकार उत्पत्ति कहै हैं:—

जे वेई जीवसौं एक क्षेत्रावगाहकरि चिपी (चिपकी) थी कर्मवर्गणा, ते (वे) कर्मत्व व्यक्त परनामरूप होकर परिणवे है सहज आप ही काल-लब्धि पाइकरि, तब ही तिसी कालविषै सो तिन वर्गणाहिका व्यक्त कर्मत्व उदय निमित्तमात्र, इतना ही पाइकरि अवरु यहु जीव चित्‌विकार भावकौं प्रगट भया परणवै है। इति सामान्य निरूपणं ।

अवरु इहां एक संक्षेप-सा दृष्टान्त जानना-जैसैं एक बिल्ली, लोटन नाम जड़ी, तिसकी जैसी वासना है तैसी वासनाकौं (लिये हुवे जड़ी), अकारणकरि सहज ही आपनपैं प्रगटै हुइ (है), ऐसी जड़ीकी वासनाका निमित्तमात्र इतना ही पाइकारि अवरु स्यानी (चतुर) अपनी गतिहि

करि प्रवीण ऐसी बिल्ली, तिन तिस जड़ीकी वासनाविषै अपनी सर्व सूरत रंजती धरी, अपनी चेष्टाकी सूरत विसरि गई, तब तिस बिल्लीके क्या विकार उपजै है ? सो बिल्ली तिसी जड़ीकौं तो जान्या करै भी तिसी जड़ीकौं देख्या करै है, फिर भी तिसी जड़ीसौं मन विरक्त नांही होइ है, तिस विषै रंज्या करैं है। ऐसी भांति भई बिल्ली तिस जड़ीके आगैं लोट्या करै। ऐसे इस जड़ी के वासनाका निमित्तमात्र, इतना ही पाइकरि बिल्ली लोटन की क्रिया करै है । तैसैं करि कर्म-वर्गणाका कर्मत्व-व्यक्त-परिणतिका निमित्तमात्र इतना ही पाइकरि यहु जीव आप ही चित्‌विकारकी क्रियाकौं करै है। इति सामान्य दृष्टान्त दार्ष्टान्तः।

अथ चित्‌विकार वर्णनम्

जब वेई जे एक क्षेत्रावगाही वर्गणा है, तेई वर्गणा जिस कालविषै कर्मत्वरूप व्यक्त होइकरि आपही आकाररूप होइकरि धारा प्रवाहरूप परणति परणवैं है। तब ही तिसीकाल यह जीव, तिस पुद्‌गलकर्मत्व व्यक्त प्रवाह परिणाम परिण-

१. जोधपुर वाली प्रति में 'प्रकाररूप' पाठ है।

तिका निमित्तमात्र , इतना ही पाइकरि अवरु इहु (यह) जीव वस्त्वंतर होइ है। सो क्या ?

जो कोई इस जीवके विषैं स्वरूपाचरणरूप, आपही विषै विश्राम लेना भाव, ऐसी धारा निज परनतिकी रह गई, तिस कर्म्ममल व्यक्त परनाम-प्रवाह-परनति विषै, पराचरणरूप-पर ही कै विषै विश्राम लेना भाव, ऐसी प्रवाहरूप परपर-नति वर्गे है। तिसी परकर्म परकर्मत्व व्यक्त धाराविषै रंजक-रागरूप-जीव परविश्राम धारा प्रवाहकरि प्रवर्त्त्या, आप विषैं विश्राम लेना छूटि गया, पुद्गल विषैं अस्परस विश्राम भाव किया, तिसका नाम वस्त्वंतर कहिये। ऐसा जब जीव आप ही वस्त्वंतर भया तब इहु जीव ऐसा विकार-रूपकरि आप ही धारारूप परनवै है। सो क्या विकार उपज्या ?

इस जीवका ज्ञानगुण तो अज्ञानरूपकरि प्रवाह परणया। सो कैसा है अज्ञानविकार ? क्रोध मान माया लोभ इंद्रिय मन वचन देह गति कर्म्म नोकर्म्म धर्म अधर्म आकाश काल पुद्गल (तथा) अन्य जीव ऐसे २ जितनेंक कछु परवस्तु है, तितनेकौं आपकरि जानैं, "ए है, सो मैं ही

हौं, मैं इनका कर्त्ता हौं, ए सर्व मेरै काम है, मैं हौं सो ए हैं-ए है सो मैं ही हौं" ऐसैं परवस्तुकौं जो आप जानैं, आपकौं पर जान्यां। तब लोकालोक जाननेकी शक्ति सर्व अज्ञान भावकौं परनई है सोई जीवके ज्ञानगुणकौं अज्ञानविकार उपज्या।

अवरु यौं ही जीवका दर्शनगुण था सो भी जेतेक परवस्तुके भेद है तितनेक भेदनकौं आप ही देखै है। 'इह है सो मैं ही हौं, आपकौं पर देखै है'। लोकालोक देखनेकी जेतेक शक्ति थी, तेतेक सर्वशक्ति अदर्शनरूप भई। यौं करि जीवका दर्शनगुण विकाररूप परनया।

अवरु जीवका सम्यक्त्वगुण था सो जीवके भेदनिकौं अजीवकी ठीकता (श्रद्धा) करै है, अजीवके भेदनकौं जीवकी ठीकता(श्रद्धा)करै, चेतनकौं अचेतन, विभावकौं सुभाव, द्रव्यकौं अद्रव्य, गुणकौं अवगुण, ज्ञानकौं ज्ञेय, ज्ञेयकौं ज्ञान, यौं आपकौं पर, परकौं आप, यौं ही करि अवरु सर्व विपरीतइ (विपरीतरूप) ठीकता-आस्तिक्यकौं करै है, यौं करि जीवका सम्यक्त्वगुण मिथ्यात्वरूप विकारकौं परनम्यां।

अवरु जो जीवका स्व आचरण गुण था सो जितना एक कछु परवस्तु है तिस परकौं स्व आच-

रण किया करै, पर ही विषै तिष्ठ्या करै, पर ही कौं ग्रह्या करै, अपनी चारित्र गुणकी सर्वशक्ति परकैई विषै लगि रही है। यौं जीवकौं स्वचारित्रगुण विकाररूप भए परनमैं है।

अवरु इस जीवका सर्वस्वरूप परनमनेका [जीव] बलरूप सर्व वीर्य गुण था सो भी सर्व वीर्य शक्ति नितइ (अत्यन्त) निर्बलरूप होइ परनम्यां। स्वरूप परिनमनें का बल रहि गया (नाश हुवा) परकौं निर्बल भया परनम्यां। यौं करि जीवका वीर्य गुण (वीर्य) विकाररूपकौं भया।

अवरु इस जीवका आत्मस्वरूपरूपरस जो परमानन्द भोग गुण था सो पर पुद्गलका कर्मत्व व्यक्त साता-असाता, पुण्य-पापरूप उदय पर परनामहि के भांति चित्‌विकार परनामहि का रस भोगव्या करै, रस लिया करै, तिस परमानंद गुणकी सर्व शक्ति परपरनामहि का स्वाद लीया करै है, सो परस्वाद परमदुखरूप (है)। यौंकरि जीवका परमानन्द गुण दुख विकाररूप परनम्यां। यौंही करि इस जीवके अवरु गुण ज्यौं ज्यौं विपरीत विकारकौं भरा हैं त्यौं त्यौं ग्रंथांतरसौं जानि लैनें।

इस जीवके सर्व गुणहि के विषै विकारकौं 'चित्विकार' नाम संक्षेपसौं कहिये। यौं करि इह (जीव) एक क्षेत्रावगाही कर्मवर्गणाहिं करि व्यक्त कर्म उदय परिणतिका निमित्तमात्र पाइकरि आप ही वस्त्वंतर भया। वस्त्वंतरके हवनेंस्यौं आपही चित्विकाररूप धाराप्रवाहरूप होइकरि तिस घिल्लीकी ज्यौं इस त्रिलोकके विषै इहु जीव नाचता फिर‍्या करै है। यहां कोई प्रश्न करै है-ऐसे चित्-विकाररूप तौं जीव आपही परिनमैं है, पै (परंतु) इस एक क्षेत्रावगाही कर्मत्व उदयका निमित्तमात्र पाइकरि विकारकौं (प्राप्त होय) सो इतने स्यौं क्या है ?

(उत्तर)-भी इतने निमित्तस्यौं इहुहै-सो इतनां जीवका विकार भाव अनित्य स्थाप्या, विकार की अनित्यता जड़ भई, विकार अवस्तु भाव आया, विकार विकार ही आया, स्वभाव न आया। क्यों (कि) जिस काल उस कर्मत्व व्यक्त[1] उदय परिणति की [ज्यौं] स्थिरता है-ज्यौं उसकी रहनी है-तो इहु जीव भी चित्विकारका कर्त्ता होइ है। अवरु जिसी काल वै एक क्षेत्रावगाही

१. कर्मत्व व्यक्त उदय का अभिप्राय, पुद्गल कर्म के उदय के साथ जीव की परिणति का जुड़ान यानी सम्बन्ध है।

कर्मवर्गणा कर्मत्व हवनेंस्यौं रह गई, सहज हीं तिसी काल इहु जीव भी चित्‌विकार भावकौं करनेस्यौं रह गया। इतना यहु तिस कर्मत्व का निमित्त का कारण है इस चित्‌विकारकौं। इस चित्‌विकार का रहना केवल तिस कर्मत्व-व्यक्त उदयके रहनेस्यौं रहै है। वह जाइ तो यहु चित् विकार भीजाइ है। इसतैं इस विकार-को अनित्यपना आया। अवरु यहु स्वाधीन वस्तु स्वभाव न आया। अवरु प्रत्यक्ष विकार, विकार ही आया। क्यौं (कि) सुभाव तो नास्ति तब होइ, जो इह जीव वस्तुका नाश होइ। तिसतैं (लेकिन) कबहूं वस्तुका नो नाश है नांही, तिसतैं वस्तुत्व स्वभावभाव नित्य आप ही आया। इस स्वभावभाव का रहना निज वस्तुत्वकैं रहनेंसौं रहना है, तिसतैं यहु स्वभाव-भाव निजजाति स्वभाव ही आया, सो केवल आपु वस्तु ही आई।

अवरु इहु विकार परके रहनेसौं रहै है, तिसतैं तो यहु अनित्य आया। इसका रहना पराधीन आया।[1] अवरु जब यहु विकार परके रहनेसौं रहै है, तिसतैं तो

१. देहली वाली प्रति में यह दो पंक्तियां अधिक हैं।

यहु अनित्य आया। इसका रहना पराधीन आया। अवरु जब यहु विकार भाव मिटि जाइ है, तब वहु वस्तु तो ज्यौं की त्यौं ही रहि जाइ हैं। तिसतैं प्रत्यक्ष जानिये है, इहु वस्तुका वस्तुस्वभाव नहीं। ऊपरी अवर (अन्य) ही सा इस वस्तुविषै यहु भाव आया। तिसतैं जो अवर (अन्य) ही सा भाव आया सा[सो]ही विकारभाव,सो आपकौं प्रतक्ष विकाररूप ही दिखावै है—'मैं इस वस्तुका वस्तुस्वभाव नहीं, इस वस्तुविषै मैं उपाधि हौं' ऐसे वहु विकार भाव आया प्रतक्ष दिखावं है।

अवरु जो कोई यौं प्रश्न करै-जब वस्तु विकारकौं प्रगटै है, तिसकाल स्वभावभाव (का) क्या होइ है? नाश होइ है कि रहै है? तिसका उत्तर-स्वभावभाव गुप्तरूप रहै है।

भावार्थ-यहु स्वभाव भाव तो प्रगट परनामरूप होइ, तो नाहीव (नहीं) गता (गया)। परन्तु वहु जो वस्तु है तो वहु स्वभाव भाव तो आप ही है। तिस विकारके जातइ व्यक्त परनाम भावरूप हवना सुहेला (सरल) होइ। जैसैं वहु बिल्ली है तो तिसका स्वभाव भावभी नाहीं गया

---

१. यह दो पंक्तियां देहली वाली प्रति में अधिक हैं।

है। क्यौं (कि) जिसी काल तिस जड़ीका निमित्त जाइ है, निमित्तके जाते ही तिस बिल्लीका लुटनां (लौटना) विकार जाइ है। तब तो तिस बिल्लीके निज जातिस्वभाव प्रगट होइ है। अवरु जु (जो) लुटतैं बिल्लीपना मिटि गया होता, तो वहु बिल्ली-का स्वभाव कहातैं प्रगट होना ? न होता। तिसतैं लुटतैं तो बिल्लीपनां नहीं जाता (है,) बिल्लीपना तो रहै है। ज्यौं बिल्लीपना रह्या, त्यौं स्वभाव भाव आप ही रह्या। अवरु जो रह्या तो व्यक्त रूप हवना सुहेला (सरल) है, इति तात्पर्य।

ऐसैं अनादिसौं यहु जीव चित्‌विकाररूप भया भ्रम्यां। अनेक २ विकारभाव ही करि नाच्या। नाचतैं २ अनंतकाल जब गया, तब किसी भव्यजीवकौं काललब्धि[1] वस्तुसुभाव भाव प्रगट परनामभाव हवनेंकी आई। सो संसारी जीव कैसा है ? संज्ञी पंचेंद्री है। ऐसे जीवके काललब्धि आये ज्यौं स्वभाव परनाम प्रगट होइ है सो रीति कहिये है:—

दर्शनमोह पौद्गलीककी तीन प्रकृति-मिथ्यात, मिश्र मिथ्यात, समकितप्रकृति मिथ्यात्व इनि तीन प्रकृतिनिका मूल तइ (से ही) नाश भया,

---

[1] काललब्धि का स्वरूप ९ वें पृष्ठ की टिप्पणी में दे दिया गया है।

अथवा उपशम भया, अथवा क्षयोपशम भया अथवा दोय प्रकृतिका तो क्षयोपशम भया (और) एक समकित प्रकृति मिथ्यात्व का उदय रह्या है, ऐसैं तो दर्शनमोह पौद्गलीककी अवस्था भई। अवरु तिसी काल चारित्रमोह पुद्गलीककी अनंतानुबंधि चउकड़ी (चौकड़ी) का मूलतैं नास भया, अथवा उपशम भया, अथवा क्षयोपशम भया, ऐसैं अनंतानुबंधि [या] की अवस्था भई। अवरु ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अंतराय, वेदनीय इन च्यारौं पौद्गलीक कर्मनके संक्षेपस्यौं केतेक (कितने ही) कर्मअंश क्षयोपशम भए, सो यहु क्षयोपशम कैसा जानना ?

वेई कर्मअंश उदयरूप ह्वनेंसौं जो नास भया सो नास क्षय कहिये। अवरु तिन कर्म-अंशनिकी सत्ता भाव रह्या है सो सत्ता उपशम कहिये। ऐसा क्षयोपशम इन अंशौंकी दशा भई। ऐसे इन पुद्गलकर्मके मिटतैं तिसकाल 'चित्‌विकार' भी सहज ही नास होइ जाइ है।

कोई इहां प्रश्न पूछै-चित्‌विकारके मिटतैं ही पुद्गलकर्म नास क्यूं न कहो ? तिसका उत्तर—इस चित्‌विकारकी स्थिति है जु पुद्गलकर्मकी स्थितिकै

आधीन है[1], अरु पुद्‌गलकर्मकी स्थिति चित्‌-विकार स्थितिके आधीन नाहीं। इस पुद्‌गलकर्मकी स्थिति काल द्रव्यके आधीन[2] है, जितने काल लगु जिन जिन पुद्‌गल द्रव्यनिकौं जिस जीवकै संग कर्मत्व (रूप) परनमना है, तितनें ही काल लगु कर्मत्वस्थिति रहै। तिस कर्मत्व परनमनेंके कालकी जब मर्यादा पूरी होइ है, तब ही पुद्‌गल-कर्मत्व परनमनेंकी स्थिति मिटि जाइ है। तिसतैं कालकी मर्यादा पूरी होते पुद्‌गलकर्मत्व स्थिति मिटै है। तिस पुद्‌गलकर्मत्वस्थिति मिटतइ चित्‌विकारकी स्थिति मिटै है[3]। तिसतैं इहां

---

१. 'पुद्‌गल कर्मकी स्थिति' से अभिप्राय, पुद्‌गल कर्मके उदयमें जीवके जुड़ान यानी सम्बन्ध की स्थिति से है। इस प्रकार चिद्विकार की स्थिति पुद्‌गल कर्म की स्थितिके आधीन है ऐसा कहा है।

२. 'पुद्‌गल कर्म की स्थिति काल द्रव्यके आधीन है' कहनेसे अभिप्राय पुद्‌गल को कर्म रूप अवस्थामें रहनेकी काल सूचक मर्यादा है। कालके आधीनका मतलब, पुद्‌गल कर्मकी स्थिति में काल निमित्त है ऐसा कहा है।

३. 'पुद्‌गल कर्मत्व स्थिति मिटतई चिद्विकार मिट जाइ है' कहने से ग्रन्थकार का अभिप्राय यह है कि पुद्‌गल कर्म सत्तामें होवें, उनमें से जो कर्म उदय में आवें उनमें जीव जुड़ाता है यानी संबंध करता है तो चिद्विकार होता है, इसलिये जितने काल तक जीव का कर्मोदय में जुड़ान है उतने ही काल तक चिद्विकार है। ऐसा ही ग्रन्थकार ने इसी ग्रन्थ के "विकार उत्पत्ति अधिकार के सामान्य निरूपण" में तथा इसी अधिकार में पीछे पत्र ५५ से निरूपण किया है।

पुद्गलकर्मत्व परनमनेकी स्थिति मिटी, इन ही के माफ़िक चित्‌विकार मिट्या। सोई चित्‌विकार जीवके जब मिटै है, तब जीवकी निजजाति वस्तु-स्वभाव जैसा था तैसाई (तैसाही) परिणामरूप व्यक्त होइ प्रवाह वगै है, (प्राप्त होय है) ते कहिये है:—

जो जीवका अनादितैं स्वभाव-आचरणभाव-रागमोहरूप होइकरि सर्व पर पुद्गलविषै आत्मा मानिकरि तिष्ठ्या था सोईस्वरूपाचरणरूप होइ। केताएक (कितनेही) निज ही वस्तुविषै मगन भया, स्थिरिभूत उपज्या। इति सामान्य कथन।

विशेषतइं (विशेषरूपसे) तिस दर्शनमोह पुद्गलकी स्थिति जैसैं नास भई, तब ही इस जीवका जो स्व सम्यक्त्वगुण, मिथ्यात्वरूप परिणम्या था सोई सम्यक्त्वगुण संपूर्ण स्वभाव-रूप होइ परणम्यां, प्रगट भया। चेतनवस्तु द्रव्य गुण-पर्याय, जीव वस्तु जातिकी जुदी आस्तिक्यता-टंकोत्कीर्ण प्रतीतिः (और) अचेतनवस्तु द्रव्य गुण पर्याय, अजीव वस्तुजातिकी आस्तिक्य-टंको-त्कीर्ण जुदी प्रतीति; सो ऐसा सर्वाङ्ग सम्यक्त्वगुण निज जातिस्वरूप होइ परनम्यां-प्रगट्या।

तिसी काल वहु ज्ञानगुण अनंतशक्तिनि करि विकाररूप अनादितैं होइ रह्या था, तिन ज्ञान गुणकी तिन अनंतशक्तिनि विषय (विषैं), सो केतीयेक चेतन निज जाति वस्तुस्वरूप स्वज्ञेय जाननेंकौं प्रतक्ष निजरूप होइ सर्व असंख्यात जीवप्रदेशनि विषै प्रगट भई; तिसकौं सामान्यसौं नाम 'भाव मति श्रुत' नाम कहिये, अथवा निश्चय श्रुतज्ञान पर्याय कहिये, अथवा जघन्य-ज्ञान कहिये, वा ज्ञानी कहिये, श्रुतकेवली कहिये, वा एकदेश प्रतक्षज्ञान कहिये, वा स्वसंवेदन ज्ञान कहिये अथवा जघन्य ज्ञान कहिये! इनसौं अवरु सर्वज्ञानशक्ति रही, ते अज्ञान विकाररूप वगे हैं, (प्राप्त होय है) इन सर्व विकार-शक्तिनि का सामान्यसंज्ञा कर्मधारा कहिये। ऐसैं तिस सम्यक्त्वगुण स्वरूप परनमनेंके काल-विषै, ज्ञान गुणकी अनंतशक्तिनि विषै तेइं ऐसी केतीयेक स्वरूपरूप होइ वगी (प्राप्त हुई)

अवरु तिसी काल विषै जीवके दर्शनगुणकी अनादितैं अदर्शन विकाररूप अनंतशक्ति होइ रही थी, ते भी केतीयेक शक्ति दर्शन निजजाति स्वस्वरूप होइकरि असंख्यात जीव प्रदेशनि विषै प्रतक्ष प्रगट भई। पैं ज्यौंकरि ज्ञानकी शक्ति

प्रतक्ष होनेकी रचना कही थी, त्यौं ही करि दर्शन-गुणकी केतीयेक प्रतक्ष हवनेंकी रचना भई। अवरु ज्यौं करि ज्ञानकी शक्ति कर्म धारारूप कही, त्यौंही करि दर्शनगुणकी केतीयेक (शक्ति) परतक्ष होनेंकी रचना भई अवरु शक्ति कर्मधारारूप वर्ते है।

अवरु तिसी काल जीवके स्वचारित्र गुणकी अनंतशक्ति अनादितैं पराचरण रूपकरि रागरूप होइ रही थी। तिन अनंत आचरणशक्तिनि विषै तेइ केतेक आचरणशक्तिन विषै तेइ केतेक आचरण शक्ति वीतराग निजजाति होइकरि निजवस्तु स्वस्वरूपविषै, स्थिररूप विश्रामकौं प्रगट भई। निज वस्तुस्वरूप आचर्या, थिरता लई अवरु श्रुति केवली जीवके, अबुधरूप जो चारित्रगुणकी केतीयेक शक्ति होइ रही है, तिससौं वै चारित्रकी शक्ति रागरूप है। जहां राग तहां बँधना है। तिसतैं श्रुत-केवलीके बुधरूप चारित्रगुण शक्तिनिस्यौं आश्रव-बन्ध नांही। अबुधरूप चारित्र राग-शक्तिनस्यौं सूक्ष्म आश्रव-बन्ध होइ है। ऐसेकरि जघन्य ज्ञानीकौं स्वचारित्र-गुणकी केतीयेकशक्ति सर्व जीवप्रदेश-निज वस्तु-विषै वीतराग होइकरि

स्थिरीभूत विश्रामकौं वगी (प्राप्त हुई)। अवरु चारित्रकी रागरूप अशुद्ध विकारकौं प्रवर्तै हैं।

अवरु तिसी काल इस जीव (एक जीव) के एक स्व परमानंद भोग गुणकी अनंत शक्ति चित्-विकाररूप पुण्य-पाप दुख-भोगकौं अनादितैं प्रवर्ती थी, तिनविषै तेइ केतीयेक शक्ति स्व परमानंदरूप होइ सुख-भोगकौं प्रवर्ती। जेतीयेक चारित्र गुणकी शक्ति स्व आचरण स्थिररूप प्रवर्ती, तेतीयेक शक्ति परमानंद भोगगुणकी स्व सुख-भोग (रूप) प्रगट भई अवरु शक्तिरूप त्यगात्माका भोगरूप प्रवर्तै है अवरु शक्तिरूप पुण्य-पाप भोगरूप प्रवर्तै है।

अवरु तिसी काल इस जीवका वीर्ज (वीर्य) वल गुणकी सर्व शक्ति अनादितैं स्वरूप परनमनेकौं निवल होइ रही थी। तिन विषैतइं केतीयेक शक्ति निजस्वरूप प्रगट हुवनेंकौं बलवंत होइ प्रवर्ती। सम्यक्त्व गुण अवरु जेतीयेक ज्ञानगुणकी शक्ति, दर्शनगुणकी जेतीयेक शक्ति, चारित्र गुणकी जेतीयेक शक्ति, परमानंद गुणकी जेतीयेक शक्ति, परमार्थ जेतीयेक स्वरूप होइ करि प्रवर्ती, तेतीयेक वीर्य गुणकी शक्ति सर्व जीव प्रदेशविषै वीर्य बलरूपधारी प्रवर्ती।

यौंकरि किसी भव्य जीवकौं काललब्धि पाइकरि सम्यक्त्वगुण ज्ञान दर्शन स्वचारित्र-परमानंद-भोग स्वभाव वीर्य गुणहूंकी केतीयेक शक्ति स्वस्वभावरूप प्रगट होइ प्रवर्ती। तिसी जीवके असंख्यात प्रदेशनि विषै ज्ञान दर्शन चारित्र परमानंदादि गुणकी शक्ति बुधिरूपशुद्ध, अबुद्ध-रूप चित्‌विकार भई अशुद्ध प्रवर्तै है। तो ऐसैं स्वरूप-विकाररूप दोय धारा बारमें गुणठानेंताई (गुणस्थान तक) रहै है। तिसतैं इस जीवकौं इतने काल लगु मिश्रधर्म परणति कहिये। क्यों ?

स्वभाव तो प्रगट भया है पै (परंतु) गुणविकार भी प्रवर्तै है, तिसतैं वह जीवद्रव्य मिश्रधर्मी कहिये। तितने काल लगु अवरु जिसी काल मन-इंद्री-बुध-शक्ति सर्वथा स्वभावरूप होइ रहेगी। तब ही जानौं अनंत शक्ति गुण ही की स्वभावरूप होइगी। तहां सर्वथा स्वभावरूप गुन कहियेगा। इति मिश्रधर्म अंतरात्मा परणति कथन समाप्तं॥ इति मिश्रधर्मवाद ॥ इति एकादश वाद॥

जीवाधिकार वर्णन।

मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरति, परपरणति फल भोगादि चित्‌विकार-भाव अवरु इस चित्-

विकार हवनेंतैं जीवकैं संसार-मुक्त भाव उपजै है ते कौंन ?

जीवके पुण्य-पाप शुभ-अशुभ भाव, राग-चीकने परनामरूप जीवका बंधभाव, रागद्वेष-मोह जीवके आस्रवभाव, परभावकौं न आचरै सो जीवका संवर भाव, चित्‌विकार के अंश नास होइ सो जीवका निर्जराभाव, जो सर्व चित्‌विकार का नास सो जीवका मोक्षभाव, इतने चित्‌विकार संसार-मुक्ति भाव भेषनि विषै एक व्याप्य-व्यापक तो जीव भया है, अवरु कोई द्रव्य नांही भया। एक आपन पैं जीव है इन रूप, पैं ए भाव कोई जीवका निज जातिस्वभाव नाही है। इतने भावहि करि जो व्यापि रही चेतना, सोई चेतना एक तूं जीव निज जातिस्वभाव जानूं। यहु जो चेतना है, सोइ केवल जीव है। सो अनादि अनंत एक रस है। तिसतैं यहु चेतना आपु साक्षात् जीव जानना। अवरु ए रागादि विकार-भाव को ई (को ही) जीवके स्वांग-भेषसे जानने निस्संदेह, तिसतैं शुद्ध चेतनारूप आप जीव भए।

इन रागादि भावनि विषै आपुन पैं जीव चेतनरूप प्रवर्तै है। चेतना है सो जीव है, जो जीव है सो चेतना है। तिसतैं चेतना रूप आपैं

आप जीव होइ तिष्ठ्या है। चेतना, इतना भाव सोई तो जीव निश्चयकरि अवरु सर्व भाव जीव पदकौं कोई नांही ॥ इति जीवाधिकार ॥

अजीवाधिकार कथन।

पांच वर्ण, दोइ गंधि, पांच रस, आठ फरस (स्पर्श), पांच शरीर, छह संहनन, छह संस्थान, पांच मिथ्यात्व, बारह अविरति, पचीस कषाय, पंद्रह जोग, मोह, राग, द्वेष, वर्गणा ज्ञानावरनी, दर्शनावरनी, वेदनी, मोहनी, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय, नोकर्म. वर्ग, वर्गना, स्पर्द्धक इत्यादि सर्व भेद पुद्गल परनाममय प्रगट जानने। अवरु यह पुद्गल जीव (के) रागादिक का निमित्त पाइ करि जीवस्यौं मिलि एक क्षेत्रावगाही होइ है-एकीभूत होइ है, ऐसे जीवस्यौं पुद्गल एकीभूत भए हैं। तिस जीव के समीप तिष्ठै पुद्गल जे २ लक्षण भए परणवै है ते २ लक्षण सर्व पुद्गल परिणाममय जानने। ते लक्षण कहिये हैं—

तीव्र, मंद, मध्यम कर्म प्रकृतिनिकौं सुख दुख रूप रस लक्षण होइ है, मन वचन काय हलन-चलनरूप लक्षण होइ है, कर्मनिकी प्रकृति

---

१ देहली वाली प्रति में यह पाठ नहीं है।

परिणामरूप लक्षण होइ है, कर्मत्व निजफल हवनेकौं समर्थ, ऐसा उदयरूप लक्षण होइ है चारि गतिरूप लक्षण होइ है, पांच इंद्रीरूप लक्षण होइ है, छह कायरूप लक्षण होइ है, पन्द्रह जोगरूप लक्षण होइ है, कषाय परिणाम-रूप लक्षण होइ है, जीव ज्ञानगुणकौं पर्यायविषै आठ नाम संज्ञामात्र वचन वर्गणा उपजावनेंका नाम रचनारूप आठ अवस्था लक्षण होइ है, जीवके चारित्रगुणकी पर्यायविषै सात नाम संज्ञामात्र वचन वर्गणारूप रचना कार्य उपजा-वनेंरूप लक्षण होइ है, जीवके सम्यक्त्वगुण की पर्यायविषै छह नाम संज्ञा वचन वर्गणारूप रचना मात्र कार्य उपजावनेरूप लक्षण होइ है, जीवकौं छह कर्मरूप रंगनाम भेद करि लीयइ ऐसा लेश्यारूप लक्षण होइ है, जीवके संज्ञा-भावकौं चारि नाम मात्र भेद रचना उपजावने लक्षण होइहै, जीवकौं भव्य अभव्य नाम मात्र रचना उपजावनें लक्षण होइ है, आहारक अनाहारक रूप नाम मात्र रचनां उपजावने लक्षण होइ है, प्रकृतिनिका निजकाल-मर्यादा–लगु रस रूप रहै सो स्थितिबंध लक्षण होइ है, कषायनिका उत्कृष्ट विपाकरूप लक्षण होइ है, कषायनिका मंद

विपाकरूप लक्षण होइ है चारित्रमोह विपाकका यथाक्रम करि नास हवनां सो संजमरूप लक्षन होइ है, पर्याप्ता, अपर्याप्ता, सूक्ष्म, वादर, एकेंद्री, वेंद्री (द्वीन्द्रिय), तेंद्री, चौरिंद्री असंज्ञी पंचेन्द्री संज्ञी पंचेन्द्री चउरासी लक्ष भेदादिरूप लक्षण होइ है, प्रकृतिनिके उदय, उदय नास अवस्थास्यौं जुदा जुदा ठिकानां (गुणस्थान) होइ है, सोई मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरति, देसविरति, प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृति करण, सूक्ष्म-सांपराय, उपशांतमोह, क्षीणकषाय, संयोग (सजोग), अजोग एते लक्षण होइ है, एते सर्व लक्षण कहे, ते सर्व पुद्गल परनाममय जाननें।

ए पुद्गल जव जीव-प्रदेशनिस्यौं एक क्षेत्रा-वगाही पुद्गल होइ है तब जीवके समीप तिष्ठे पुद्गल इतने इन लक्षणहिकौं परिणमैं है। तिसतैं इन लक्षणरूप पुद्गल परिनामहि कौं जीवसमीपी कहिये। तिसतैं ए सर्व पुद्गल परिणाम अचेतन जाननें-पुद्गल मय जाननैं। इनकौं चेतनका भ्रम न करना। किसी काल (भी) अन्य द्रव्य ही जाननां। इनकौं जीवकी प्रतीति करै, सोई मिथ्यात्व है। सम्यक् ज्ञाता, इनकौं

अचेतन पर द्रव्य जुदा ही जानै है, आपकौं चेतनारूप चेतन द्रव्य जुदा आचरै है।

अवरु ए ज्यौं है जीवस्यौं एक क्षेत्रावगाही पुद्गल, ते जो ए उदयरूपकौं परणमै है, सहज ही तिसी काल जीवका चित्‌विकार भी तिन उदयका निमित्तमात्र पाइकरि तिसी भांति तइ-सइ (तैसे) भावकरि, तैसेई कूट(बनकर)करि, तैसेई स्वांग-करि,तैसेई तकलीद(प्रभाव)करि चित्‌विकारके भाव होइ है।

जो पुद्गल क्रोधकौं उदयरूप परिणमै, तो तिसीकाल चित्‌विकार भी तइसाई (तैसा ही) भाव होइ है, ऐसैं सर्व जानने। ऐसे इन जीवके चित्‌विकार भावहू कौं उदयीक भाव कहिये। अथवा जब इन एक क्षेत्रावगाही पुद्गलप्रकृति उपशम, क्षयोपशम, क्षय इन तीन प्रकार नास होनें की जुगतिकरि पुद्गलप्रकृति नास होइ है, जब तिसीकाल तिसी भांतिका इसी जीवका चित्‌विकार भी नास होइ जाइ है, निस्संदेह। जहां चित्‌विकार नास भया तहां केवल एक चित् आप ही प्रगट होइ रहै। परंतु एक विशेष है—

जिस प्रकार करि प्रकृतिनिका नासका भाव हुवा होइ, तिसी भांतिका यह चित् शुद्धता का

नांव पावै। प्रकृति उपशमैं तो चित् उपशम-शुद्धता नाम पावै। प्रकृति क्षयोपशमतैं चित् क्षयोपशम शुद्धता नाम पावै। प्रकृति क्षयतैं चित् क्षायिकशुद्धता नाम पावै। अइसैंकरि जीवके भए चारिभाव-उदीक (औदयिक), उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक-इन भावहि के रूपकरि कोई जीवका निज जातिस्वभाव लखैं सो मिथ्यात्वी है।

अब इन चार्‌यौं भावहि विषै प्रवर्त्या एक चित्, इन रूप चित् ही भया है। सोई चित् एक केवल, जिन लख्या आपकौं सोई जीव निज जाति का ज्ञाता भया। इन चार्‌यौं भावहि विषै व्यापी एक चेतनां, सोई चेतना एक जीव निजरूप होइ प्रगटी, अवरु शुद्धाशुद्ध लच्चण तिसी चेतनाके भाव आए। जब शुद्ध भाव है तब अशुद्ध नांही, जब अशुद्ध भाव है तब शुद्ध नांही। अवरु कितनेक काल लगु शुद्ध-अशुद्ध दोनौं भी भाव होइ है, पैं यहु चेतना इन भावहि विषै सदा पाइए, यहु कबही अस्त होइ नाहीं, जातैं अनादि-निधन (अनादि अनंत) रहइ है। तिसतैं ज्ञाताके चेतनाईका जीवरूप आचरण है। एक चेतनाईकरि जीवकौं प्रगटै है। निस्संदेह,

एक चेतनाईरूप जीव प्रगट भया । इति अजी-वाधिकारः ।

कर्ता कर्म क्रिया अधिकार वर्णन

जिस वस्तुस्यौं परनाम-प्रवाह वण्या (प्राप्त) करै, तिस वस्तुकौं प्रवाहका कर्त्ता कहिये । पुनः तिस वस्तुके तिस परनाम-प्रवाहकौं कर्मसंज्ञा कहिये । तिस परनाम-प्रवाह विषै पूर्व परनाम क्षय[1], उत्तर परनामका उपजना सो क्रिया कहिये । पैं कर्ता-कर्म-क्रिया ए तीनौं एक वस्तुके होइ है । वस्तुत्व विषै कछु भेद नाही । जैसैं मांटी (मिट्टी) कर्ता, घड़ा कर्म, थूहा आकार मिटै घटाकार होइ सोई क्रिया, ऐसैं एक मांटी वस्तु विषै इन तीन भावहि का विकल्प कीजे है, परंतु कर्ता-कर्म-क्रिया ए तीनौं मांटी के ही हैं, एक माटीस्यौं जुदे नाही। इन तीनौं भेदविषै मांटी एक ही है, तीनौं मांटीसौं उपजे है । तैसे चेतन वस्तुके तीनों अचेतन ही होइ है, अचेतन वस्तुके तीनौं अचेतन ही होइ है। अपनी २ वस्तुकौं ए तीनौं व्याप्य-व्यापक होइ हैं । पर सत्तासौं व्याप्य-व्यापक कोई न होइ यह सदाकी मर्यादा है ।

१, जोधपुर वाली प्रति में 'क्षय' के स्थान पर 'व्यय' पाठ है ।

एक कर्त्ताकैं चेतन-अचेतन दोइ कर्म न होइ। एक कर्मकै चेतन-अचेतन दोइ कर्त्ता न होइ। एक कर्त्ताके चेतन-अचेतनरूप दोय क्रिया न होइ। एक क्रियाके चेतन-अचेतन दोइ कर्त्ता नांही होइ। एक कर्मकै दोइ क्रिया नाही। एक क्रियाकै दोइ कर्म नांही। एक कर्त्ताके चेतनकर्म अचेतनक्रिया न होइ, अचेतनकर्म चेतनक्रिया न होइ। एक कर्मकै चेतनकर्त्ता अचेतनक्रिया, अचेतनकर्त्ता चेतनक्रिया न होइ। एक क्रियाकै चेतनकर्त्ता अचेतनकर्म, चेतनकर्म अचेतनकर्त्ता न होइ। तिसतैं एक चेतन सत्वकै-एक चेत (चेतन) जाति के-कर्त्ता कर्म क्रिया तीनौं व्याप्य-व्यापक जाननें। अचेतन एक सत्ताके-एक अचेतन जातिके कर्त्ता कर्म क्रिया व्याप्य-व्यापक जानने। परद्रव्य का कर्त्ता परद्रव्य किसी भांति करि न होइ। परद्रव्यका कर्म परद्रव्यकौं न होइ। परद्रव्यकी क्रिया परद्रव्यकौं क्रिया न होइ, किसी भांतिकरि न होइ, निस्संदेह। ज्ञाता जानैं, मिथ्यात्वीकौं किछू सुधि नांही।

पुनः अन्यत्-परद्रव्य परनमावनेके लिये आपु निमित्तका कर्त्ता नांही, अवरु कोई द्रव्य किसी

द्रव्यकौं परनमावै नांही। क्यौं (कि) कोई द्रव्य निःपरिनामी (अपरिणामी) नांही, परिणामी सर्व द्रव्य है। अन्यत् कोई जानैगा-जीव पुद्गल मिलि एक संसार-परिणति उपजी है, सोई अनर्थ है। क्यौं (कि) दोइ द्रव्य मिलि कब ही एक परिणति न होइ। अरु एक परिणतिकौं जु होइ तो दोनौं द्रव्यहि का नास होइ। इति दूषणः। तिसतैं चित्‌विकार संसार-मुक्तिकौं आप ही व्याप्य-व्यापक होइ है, अवरु जुदा प्रवर्ते है। अवरु तहाँ ही पुद्गल ज्ञानावरणादि कर्मत्वरूपकौं व्याप्यव्यापक भया अनादिसौं जुदाई (जुदा ही) सदा परिणवै है, इतना ही जाननां।

जीव पुद्गलकौं परस्पर संसारदशा विषैं निमित्त-नैमित्तिक भाव जानना, सहज ही परनमैं आप आपकौं जुदे जुदे। कोई जीव-पुद्गलसौं परस्पर संबंध किछु नांही। जिन यहू कर्ता-कर्म-क्रिया का भेद नीकैं जान्या, तिन अपनी चेतना जुदी जानी। अपनी परनतिकी शुद्धता भई अवरु सोई संसारसौं विरक्त भलैं होइ है, परमात्म-स्वरूप (की) प्राप्ति तिसीकौं होइ (है)। इति कर्ताकर्मक्रियाधिकार।

पुण्यपापाधिकार ।

पुद्गलीक पुण्य-पाप एक कर्मके दोइ भेद हैं। इन दोनौंकी एक कर्मजाति है, कर्म अभेद है, अवैर है, अचेतन है। जीव चित्‌विकार विषै भी उपजे पुण्य-पाप, तैं दोनौं एक विकार भावके भेद हैं। विकारजाति एक ही है, विकारसौं अभेद है दोनौं, आकुलतारूप है, संसाररूप है, खेदरूप है, उपाधीक (औपाधिक) है, अवरु दोनौं कर्म-वंधके निमित्त हैं, दोनौं आपु एक वंधरूप है, तिनसौं मोक्ष कैसैं होइ? जो इन दोनौं सौं मोक्षकी प्रतीति रावै है, सोई अज्ञानी है। (क्योंकि) जे (जो) आप वंधरूप (है) तिनसौं मोक्ष कैसैं होइ? इनसौं मोक्ष कवही न होइ।

एक जीवकी निज जातिरूप चेतना, सोई स्वभाव प्रगट भए मोक्ष (होय) है। ते (उस) चेतनाका स्वभाव मोक्षरूप है। तिस प्रगटसौं केवलमोक्ष ही है, निस्संदेह। तिसतैं ज्ञाताके ऐसी चेतनाका आचरन है, तहां सहज ही मोक्ष होइ है। जीवका विकार पुण्य-पाप केवल वंधरूप है, त्याज्य है। एक जीवका चेतना स्वभाव (ही) मोक्ष है॥ इति पुण्यपापाधिकारः॥

आस्रवाधिकार

आश्रव कहिये आवना, चित्‌विकाररूप राग-द्वेष-मोह, ए (ये) आश्रव जीवके हैं, मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, जोग (ये) अचेतन पुद्गल के आस्रव है। तिसतैं चित्‌विकार (रूप) राग-द्वेष-मोह तो पुद्गलीक (पौद्गलिक) आश्रव आवनैंकौं निमित्तमात्र है। अवरु पुद्गलीक मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, जोग (ये) आठ प्रकारादि (रूप) कर्मवर्गणा आवनैंकौं निमित्त है। तिसतैं ज्ञानरूप जब जीव परनम्या, तब ही राग-द्वेष-मोह (रूप) चित्‌विकार आश्रवस्यौं रहित भया। तहाँ सामान्यसौं ज्ञानी निराश्रव कहिये। निरास्रव मुख्य नाम पावै, यथा (जैसै) ज्ञानी। अवरु जो भेदसौं देखिये तो जब लगु ज्ञान दर्शन चारित्रादि गुणहि का जघन्य प्रकाश है, तहां आत्मा (का) स्वभाव जघन्य कहिये; तब लगु ऐसा जघन्य ज्ञानी बुद्धिपूर्वकस्यौं तो निराश्रव कहिये। अवरु जघन्य ज्ञानी अबुद्धि-पूर्वक रागभाव (रूप) परिणामकलङ्कसौं आश्रव-बंध होइ है। तिसतैं जघन्य ज्ञानी बुद्धिपूर्वक परिणामहिस्यौं (से) निराश्रव (और) निर्बंध प्रवर्तै है।

जब अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, चारित्रादि प्रकाशकरि उत्कृष्टकौं प्रगट भए तहां आत्मस्वभाव उत्कृष्ट कहिये। ऐसा उत्कृष्ट ज्ञानीके बुद्धि-अबुद्धि भावका नाश होइ गया, तिसतैं सर्वथा साक्षात् निराश्रव (और) निर्बंध कहिये। उत्कृष्ट ज्ञानीकौं एक लिराश्रव, साक्षात् निराश्रव 'दोय विशेष भेद जाननें। ऐसा चेतन आश्रव जु है सो विकार है। तिसतैं (हे) संत! एक तूं निज-जाति चेतनाई जीवका लिज स्वभाव जानौं। इति आस्रवाधिकारः।

बंधाधिकार

बन्ध कहिये संबन्ध, जीवका चारित्रविकार राग बन्ध है। चीकना-रूखा पुद्गल ही का बन्ध है।

भावार्थ—पुद्गलीक कर्मवर्गणा तो आपस बीच चीकने-रूखे भावकरि संबन्ध करै है। ऐसैं पुद्गल कर्मस्कन्ध रागी जीवके राग परिणामहि करि जीवप्रदेशनिसूं चिपै (चिपकता) है। कर्म-स्कंध ऐसे चेतनविकार बन्ध-अचेतन बन्ध जाननें, तिसतैं राग जीवका विकारभाव है। [ते] एक चेतनाई जीवका स्वभाव जाननां, सो चेतनाई

१. जोधपुर वाली प्रति में इसके स्थान पर 'होई' ऐसा पाठ है।

जीव है। बन्ध भावजु है सो कोई विकार ही है, कोई जीवत्व नांही। इति बन्धाधिकार।

संवराधिकार

जेतेक कछु कर्म नास भए काललब्धि पाये (पाकर) (हे)[1]संत! तेतेक जीवविकार भी नास भया। तिसतैं विकारके नाश होतैं जेतेक सम्यक्त्व गुण, ज्ञान, दर्शन, चारित्रादिक ते स्वरूप रूप होइ प्रगट, ते विकारकौं नहीं प्रवर्तैं, तिसकौं संवरभाव कहिये।

भावार्थ—ते (वह) शक्ति (जो) विकाररूप न होइ सो संवरभाव (है)। ऐसा जीवकै संवर-भाव होतें, तिस जीवकी कर्म वर्गणाहि का आवनें का भी सहज ही निरुंधनां (रुकना) होइ है। यौंही यौंही करि जीवसंवर, पुद्गलकर्मसंवर दोनौं होते होते जीव सर्व आपैं आप संपूर्ण स्वभाव-रूप प्रगट होइ आवै है अवरु तिस जीव प्रति, कर्मवर्गणा आवनेंसौं सर्व निरुंधन होइ (रुक) जाइ है। ऐसे करि जो संवररूप विषै जु प्रगट्यो, सोई एक चेतनाई (चेतनाही) का स्वभाव जानना। सोई चेतनाई जीव संवरसौं कोई भाव है। इति संवराधिकारः।

---

१. जोधपुर वाली प्रति में इसके स्थान पर 'संतै' ऐसा पाठ है।

संवर पूर्वक निर्जराधिकार

ज्यौं ज्यौं पुद्गलकर्म विपाक देइ नास होइ है, त्यौं त्यौं चितविकार के भाव भेद भी नास होइ है। अरु जे भाव [भाव] नाश भए, भी (फिर) तिनका हौंना निरुंधना होइ है। ऐसै करि अचेतन-चेतन संवरपूर्वक कर्मविकार दोनूंका नाश होइ, सो संवरसहित निर्जरा कहिये। ऐसी निर्जरा होते होते जीव स्वभाव प्रगट होइ है, कर्म सब दूरि होइ है. तिसतैं निर्जरा कोई भाव है। अवरु जो निर्जरावंत चेतना सो एक चेतना जीव वस्तु है। इति संवरपूर्वक निर्जराधिकारः।

मोक्षाधिकार

ऐसे संवरपूर्वक निर्जरा होते होते अवरु जब जीव गुण, एक कर्मपुद्गल वा जीवद्रव्य एक कर्मपुद्गल सर्वथा जीवस्यौं जुदे भए-भिन्न भए, ऐसे इन पुद्गलकर्म (का) सर्वथा नाश होते जीवका गुणविकार पुनः जीवका प्रदेशविकार सर्वथा विलय जाइ है। जब ऐसैं पुद्गलकी रोक अरु जीवविकार सर्वथा नाशकौं भए, तब ही सौं मोक्षभाव कहिये। ऐसा मोक्ष भाव होतैं

संतै साक्षात् सर्व निजजाति जीवका स्वभाव-रूप प्रगट भया। जो सर्व स्वभाव भाव अनादिसौं विकाररूप होनेसौं गुप्त होइ रह्या था, ते भी काल पाइकरि विकार कछु दूरि भया; तिस काल कछु स्वरूप भाव साक्षात् प्रगट भया। तितनाईं स्वरूप वानगीविषै संपूर्ण स्वरूप वैसाई आनि प्रतिविंवै है, भी और तिहांस्यौं स्वरूप प्रगट क्रम-क्रमकरि साक्षात् होता जाइ है होते होते।

भावार्थ—इहू जितना एक विकारविषै स्वरूप भया था सो साक्षात् तितनाई स्वरूप विक्त (व्यक्त) होइ आया। यौंही २ स्वरूप आत्माका उत्कृष्ट स्वरूप कौं साधता आवै था, प्रकाशता आवै था, सो सर्व संपूर्ण प्रगट सिद्ध होइ निवरी, (पूर्ण हुई) सो संपूर्ण साक्षात् प्रगट भई, अवरू कछु प्रगटनैंकौं रह्या नाही। जो जिस भांति करि स्वरूप प्रगटना था सो प्रगट होइ निवर्‌या। ऐसैं करि आत्मा (का) स्वरूप संपूर्ण परनाम प्रवाहकौं भया।

तहाँ तिस आत्माकौं नाम संज्ञा करि क्या कहिये ? परमात्मा, सिद्ध, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्व-स्वविश्रामी, मुक्ति, धर्मी, केवल, निष्केवल, स्वयं। तात्पर्य यहू-सर्व मोक्षभाव विषै जैसा जीवका

स्वरूप था, तैसाई सर्व परनम्यां। तो यह कोई मोक्षतौं भाव है; जो मोक्षवंत है चेतना, सो एक जीव निजजाति है। इति मोक्षाधिकारः।

कुनयाधिकार

जो कोई विकल्पी यौं मानैं स्वभाव भाव परिणतिरूप होइगा तब ही तो स्वभाव मानौं, अन्यथा न मानौं, तो तिन अज्ञानी (ने) वस्तुका नाश किया, वस्तु न जानी। अवरु जो कोई यौं मानैं-स्वभाव भाव प्रगट परणतितांई क्या है, वस्तु ही सौं कार्य सिद्धि है? तो ऐसैं अज्ञानीने स्वभाव भाव परिणतिका नाश किया, शुद्ध ह्वनें का अभाव किया, विकारपरिणति सदा राखनेंका भाव किया, मुक्ति ह्वनेका नाश किया।

अवरु जो कोई यौं मानैं-यह जो कछु करै है सो सर्व पुद्गल कर्म करै है, जीव न कछु करै न करावै, जैसा का तैसा होइ रहै है जुदा, तो तिन (वह) अज्ञानी आपकौं शुद्ध-अशुद्ध दोनों न देखैं। स विकार-अविकार स्वभाव दोनौं न जानैं, सो विकारकौं छांड़ैगा नांही। अवरु कोई यौं मानैं-पुद्गलविपाक निमित्तमात्रताई क्या है, आपैं आपकौं निमित्त होइकरि आपैं विकारकौं

परिनमौं हौं ? तो तिन अज्ञानी (ने) विकार नित्य किया, स्वरूप की ज्यौं किया (स्वरूप के समान माना)।

सविकल अमूर्त्त द्रव्यके छाया तो है नांही, परंतु कोई अज्ञानी जीवकै छाया थापिकै तिस छायाकौं कर्मविटंवना (कर्म विडम्बना) लगावै, जीवकौं जुदा राखै. तो तिस अज्ञानीकै यहु छाया भी एक वस्तु है, जीव तिस छायासौं और किनहीं क्षेत्रहु आया।

अवरु कोई अज्ञानी यौं करि मानैं है-स्वचेतन पर अचेतन, इतनेंई ज्ञान-दर्शन होते जीव सर्वथा मोक्षकौं भया, साक्षात् सिद्ध पदकौं प्राप्ति भया, सर्वथा ज्ञानी होइ निवर्‌या अवरु जीव शुद्ध हवनेंकौं कछु आगैं रह्‌या नांही, तिन पुरुष (ने) भावइंद्री-भाव मन, बुद्धिपूर्वक-अबुद्धिपूर्वक अवरु जावंति (जितनी) अशुद्ध प्रगट जीवकी चित्त-विकाररूप परनति, तितनी जीव द्रव्यकी न जानी। जीवद्रव्य वर्त्तमान वर्तता न देख्या, तहाँ तिन देश (एकदेश) भावकौं संपूर्ण भाव थाप्या, यहु भावइंद्रियादि परिणति और किसी द्रव्यकी थापी, तहाँ तिन पुरुष (ने) अशुद्ध परनति रहैंस्यौं अशुद्ध न मान्या। अवरु इस (अशुद्ध) परनति

गए स्यौं कछु जीव पर्यायकौं शुद्ध न मानैगा, तहाँ तिन पुरुष (ने) साक्षात् परमात्मस्वरूप-संपूर्ण स्वरूप-सर्वथा मोक्षस्वरूप-हवनेका नास्ति किया, सदा संसार राखनेका उद्यम कीया।

अवरु कोई अज्ञानी यौं मानैं–स्वसंवेदन शक्तिहि कौं संपूर्ण स्वभावरूप ज्ञान भया मानैं, इतनी ही ज्ञानकी शुद्धता मानैं, इतना ही ज्ञान भया सर्व मानैं, इतने ही स्वसंवेदन भावकौं स्वरूप मानैं, इसीकौं सिद्धपद मानैं और सर्व भावहि कारि जीवकौं सून (शून्य) मानैं, चारित्र गुणके स्वभावकी ज्यौं (समान) ज्ञान-दर्शनके स्वभावकौं मानैं, तहाँ तिन अज्ञानी (ने) स्वज्ञेय-परज्ञेय प्रकास (प्रकाशक) ज्ञानका निज स्वभाव न श्रध्या है अवरु तिसी पुरुषकौं स्वका देखनेका, परके देखनेका दर्शन गुणका निज स्वभावरूप न श्रद्ध्या है, अवरु तिसी पुरुषकौं स्वपरका भेद उपजनेका नांही। क्यौं ? जु (जो) परकौं जानिए तो स्वका भी जानना उपजै, क्यौं (कि) परपद तो तब थपै है, जब कोई पहलैं आपा थापैं है और आपा जब थापै है तब पहलैं पर थापै है। और यौंही कहिये-ज्ञानके स्वभावकौं आप ही थापनेका है, मेरै अइसाई (ऐसा ही) ज्ञान प्रगट्या है,

तो यह पुरुष वातैं करि (वातों के द्वारा) तो ऐसा भाव कहो, परंतु तिस पुरुषकैं आपा थापनें का ज्ञान उपज्या नहीं। आपा थापनेका ज्ञान जव उपजै, तव परकौं पर थापनेका भाव उपजै। स्वपर-प्रकाश (प्रकाशक) ऐसा ज्ञानका दर्शन का निज भाव (स्वभाव) ही है। अवरु इस स्वभावकौं न मानैं तहाँ ज्ञानदर्शन गुण नाश भया। जहाँ गुण नाश भया तहाँ द्रव्य नाश भया जहाँ द्रव्य नाश भया तहाँ वस्तु नाश भई। एकांत सर्व थापनैं करि एक सुसंवेदनकी मान तैं ऐसे नाश की परंपरा सिद्ध है, अवरु किछु साध्य [की] सिध [सिद्धि] नांही।

अवरु कोई अज्ञानी यौं मानैं—जावंत किछु जब लगु ज्ञान जानैं है तव लगु ज्ञान मैला है। जव ज्ञान (का) जानना स्वभाव मिटि जाइगा, तव ही जीव सिद्धरूप होइ है ? तिन अज्ञानी (ने) ज्ञानका स्वभाव मूलस्यौं जान्या नाहीं। यौं नहीं जानता, (कि) ज्ञान ऐसा तो तिसकौं कहिये है, जो जानैं अवरु वहु जानना ही दूर किया, तव वहु ज्ञान कैसैं कहिये ? तिस ज्ञान गुणका नाश ही भया, तहां वस्तुका नाश सहज

ही भया। एतादृशा बहवोऽनर्था ज्ञेयाः। इति कुनयाधिकारः।

सम्यग्भावस्य[1] यथाऽस्ति तथाऽवलोकनाधिकार

चेतन, अचेतन, द्रव्य, गुण, प्रजाय (पर्याय) रूप जांवंति (जितने भी) ज्ञेय, तितने ही का जु देखना जानना सो देखना-जानना ही कोई चेतन द्रव्यकी सिद्धि है। भो! वहु तो जीव वस्तुकी सिद्धि न भई जो सब ज्ञेयका देखना जानना प्रकाशकी ज्यौं है। जीव वस्तुकी इतनी सिद्धि है, निस्संदेह जो चेतना का पिंड-चेतनागांठि, अवरु कर्म, शरीर, कषाय; राग,द्वेष, मोह, मिथ्यात्व, नाम, जसकीर्तिः (यशःकीर्तिः) इंद्रिय, पुण्य, पाप, जीवस्थान, जोनि (योनि), मार्गणा, गुणस्थान, आदि जावंति पुद्गलीक भाव, इन भावहि कौं जीव वस्तुकी प्रतीति करैगा कोई, सो तो ए भाव सर्व अचेतन परद्रव्यके परसत्त्वा (परसत्त्वस्वरूप) हैं।

जीव वस्तुकी इतनी ही सिद्धि-जु चेतना-भाव पुंज। अवरु अज्ञान, अदर्शन, मिथ्यात्व, अविरति, शुभ, अशुभ, भोग, राग, द्वेष, मोह आदि चित्विकार, सो विकार (को ही) जीव वस्तुकी कोई प्रतीत करैगा, सो विकार तो कोई

---

१. सम्यग्भाव का स्वरूप जिस प्रकार है उसी प्रकार अवलोकन करना।

जीव वस्तुकी सिद्धि नांही, सो तो चेतनका कलंक भाव है।

जीव वस्तुकी इतनी ही सिद्धि-मूलचेतनामात्र। अवरु सम्यक्त्व भया, एकाग्रता भया, जथाख्यात (यथाख्यात)[1] भया, अंतरात्मा भाव भया, सिद्ध भाव भया, केवलज्ञान केवलदर्शन भया, स्व-भाव प्रगट भया, इत्यादि भावहि का हवनां, तिस हवनेकौं कोई जानैंगा सोई जीव वस्तु है? अरे! सो तो प्रगट हवने के भाव सर्व चेतना-की अवस्था है-दशा है।

जीव वस्तुकी इतनी ही सिद्धि-चेतनामात्र मूलस्थान। संसार-मुक्ति भाव, सो कोई जानैंगा सोई जीव वस्तु है, भो! सो भी तो चेतनाकी दशा है। जीववस्तु इतना ही-मूल चेतनामात्र। अवरु अमूर्तादि भावहि कौं कोई जीव वस्तु जानैंगा, भो! सो तो अचेतन द्रव्यहि विषै भी पाइये है।

जीव वस्तु इतना ही-मूलस्थान चेतनामात्र। अवरु कर्ता कर्म क्रिया, उत्पाद व्यय ध्रौव्य, द्रव्य गुण पर्याय, द्रव्य क्षेत्र काल भाव, सामान्य

---

१. जोधपुर वाली प्रति में इतना पाठ अधिक है।

विशेष इत्यादि भावभेदहिकौं जीव वस्तु जानैंगा, भो ! सो तो भेद सर्व वस्तु ही की नित्य अवस्था है।

जीव वस्तु इतना ही-चेतनामात्र मूलवस्तु। अवरु द्रव्यार्थकरि वस्तुभाव प्रगटीये (प्रगट होता) है, अवरु पर्जार्थिक (पर्यायार्थिक) करि वस्तु प्रगटीये है, वा निश्चय करि वस्तु प्रगटिये है, वा व्यवहार-करि वस्तु प्रगटिये है, इन भावहि कौं कोई जानैंगा-जीव वस्तु है, भो ! सो भी तो वस्तु अवस्था है-वस्तु दशा है। जीव वस्तुकी इतनी ही सिद्धि-चेतना वस्तु मूल (स्वरूप है)।

भावार्थ—सर्व यहु है, जो चेतना सोई जीव वस्तु की सिद्धि है, जीव वस्तु एक चेतना निपन्न (निष्पन्न) भई। अवरु भेद विकल्प जीववस्तु मूल करि न होइ, एक चेतनाई (चेतनाही) भेद ( ) जीव द्रव्य की सिद्धि भई। चेतना करि तो निस्संदेह जीव वस्तुकी सिद्धि प्रगट करी। अब यहू चेतना, निस्संदेह करि, प्रगट कीजै है:-

भो भव्य ! सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, सुख, भोगादि इन हि भावहि करि जु बंध्या एक पिंड-एक मेलापक-एक पुंज-तिस पुंजकौं चेतना कहिये। इसी पुंज पिंडरूप करि चेतना सिद्-

नीयजी (सिद्ध हुई)। चेतना इनही गुणकी गांठि सिद्ध भई। इन ज्ञानादि भावहि तैं जे कछु अवर सर्व भाव रहे, ते भाव कोई चेतनाकौं न प्राप्त भए। चेतना (से) निस्संदेह इन ज्ञानादि भावहि की सिद्धि भई।

भावार्थ—सर्व यहू अवरु भाव कोई चेतना-रूप न होइ, चेतना इन ज्ञानादि भाव की उपजी अनादितैं (है)।

इहां कोई प्रश्न करै है—जो चेतनाकरि जीव-वस्तु अनादिसौं सिद्ध है अवरु इन ज्ञानादि भावहि करि अनादिसूं चेतनाकी सिद्धि है, तो वहुस्यौं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रादि उपजै, सो उपजना क्या कहिये ? सो तू सुनः—

मित्र! यहू उपजी चेतना अवरु चेतना को ज्ञानादि भाव तो अनादिस्यौं ज्यौं है त्यौं ही है, इन विषै तो हलचल कछु भया नांही। प्रत्यक्ष है, कहूँ आये गये नांही, इस बात मांही संदेह कछु नहीं भइया! वस्तु तो छती है, विद्यमान है, परन्तु यहू विभाव-विकार-भाव कोई दोष अना-दितै इस जीवकौं उपज्या, तिसतैं बावलेकी-सी दशा होय रही है। (सो क्या) ?

आपकौं परथापै, परकौं आप थापै, आपका परका नाम भी न जानैं। दर्शन, ज्ञान सम्यक्त्व, चारित्र, परमानंद, भोगादिभाव विकार जो भए (उनमें) ज्ञान तो अज्ञानरूप विकारकौं प्रवर्त्या, तहाँ स्वज्ञेय आकारकौं जानैं नहीं, परज्ञेय आकारकौं जानैं नहीं, स्वज्ञेय (और) परज्ञेयका नाममात्र भी जानैं नहीं, ऐसैं ज्ञानकी शक्ति अज्ञानरूप भई प्रवर्ती।

दर्शन अदर्शनरूप विकारकौं प्रवर्त्या-तहाँ स्वदृश्य (अपने देखने योग्य) वस्तु देखै नांही, परदृश्य वस्तु देखै नांही. स्वदृश्य [और] परदृश्य नाममात्र भी जानैं नाही, ऐसैं दर्शनकी शक्ति अदर्शनरूप भई प्रवर्ती। स्वकी स्वकरि प्रतीत नांही, परकी परकरि प्रतीत नांही, मिथ्यारूप होइ ऐसे सम्यक्त्वकी शक्ति प्रवर्ती।

चारित्र विभावरूप प्रवर्त्या-तहाँ निजवस्तुभाव थिरता-विश्राम आचरण-छोड़िकरि, चारित्रकी सर्व शक्ति परपुद्गल स्वांगवत् विकारभाव ही विषै थिरता-विश्राम आचरणा-रूप प्रवर्ती, ऐसे चारित्र विभावरूप प्रवर्त्या।

भोगगुण विभावरूप प्रवर्त्या-तहाँ निज स्वरस स्वाद-भोग-छोड़ि करि, परपुद्गल स्वांगवत्

चित्‌विकार भावहि का स्वाद भोगरूप प्रवर्त्या, ऐसे भोगकी शक्ति विभावरूप प्रवर्ती।

ऐसे भईया, जब चेतना विकार [रूप] भई, तब यहू चेतना आपु नास्तिरूप-सी होइ रही। ऐसा कोई कौतुकरूप भया, जैसें हाथ उपरि वस्तु धरी अवरु ठौर (स्थान) देखते फिरिये, सो सूल[1] (हाल) इस चेतनाका भया। आपा नास्ति यहू भ्रमरूप भया (तो) भी काल पाइकरि सम्यक्त्व गुण तो विकारसौं रहित होइकरि सम्यक्त्वरूप होइ प्रवर्त्या, अपने शुद्ध श्रद्धानरूप होइ प्रवर्त्या, ऐसे निर्विकल्प सम्यक्त्वकौं सम्यग्रूप कहिये। अवरु जब विशेष भेद विकल्पकरि सम्यक्त्व गुणकौ सम्यग्रूप [कहिये कौं] कीजे? तब कहिये—

स्वजाति स्वजातिकरि जुदी ठीकता भई, ऐसैं तो विकल्प जानना। सम्यग् इतना तो निर्विकल्प जानना। अवरु तब ही ज्ञान गुणकी केतीक शक्ति सम्यग्रूप परनमी, जाननेरूप केवल प्रवर्ती, ऐसे निर्विकल्प ज्ञानकी शक्तिनिकौं सम्यक्रूप इतना कहिये, (फिर) भी जब भेद विकल्प ज्ञान शक्तिके सम्यक् कौं कीजे, तब कहिये—

---

1. जोधपुर वाली प्रति में इसके स्थान पर 'मूल' पाठ है।

स्वज्ञेय जाति भेद जानैं है, परज्ञेय जातिभेद जुदे जानैं है, ऐसे विकल्प कीजे। सम्यक् ज्ञान-शक्ति इतना कहना निर्विकल्प, तवही दर्शनगुण-की केतीक शक्ति सम्यक्दर्शनरूप होइ प्रवर्ती-केवल दर्शनरूप प्रवर्ती। ऐसे तो निर्विकल्प दर्शनकौं सम्यक्त्वरूप कहिये। अवरु जव विशेष भेदकरि कहिये सम्यगदर्शनकी सम्यग् शक्तिनिकौं, तव कहिये:—

स्वद्रव्य वस्तुजाति जुदी देखै है, परद्रव्य वस्तुजाति जुदी देखै है, ऐसैं तो विकल्प, अवरु दर्शन शक्तिकौं सम्यग् इतना कहना निर्विकल्प है। तव ही चारित्र गुणकी केतीयेक शक्ति सम्यग् होइ प्रवर्ती-केवल चारित्र निजरूप होइ प्रवर्ती। ऐसैं तो चारित्र शक्तिनिकौं 'निर्विकल्प-सम्यक्' कहिये। अवरु जव भेद विकल्प चारित्रकी सम्यग् शक्तिनिकौं (कीजे) तव कहिये—

पर छोड़्या, निजस्वभाव भावविषै स्थिरता-विश्राम-आचरणकौं करै है, यहू विकल्प। चारित्र शक्तिनिकौं सम्यग्रूप इतना कहना, 'निर्विकल्प'। तव ही भोग गुणकी केतीयेक शक्ति सम्यक्रूप होइ प्रवर्ती-केवल निज भोगरूप प्रवर्ती। ऐसैं भोग गुणकी शक्तिनिकौं सम्यग् (सो तो)

निर्विकल्प कहिये अवरु भेद विकल्प जब कीजै भोग गुणकी शक्तिनिकौं, तब कहिये—

परस्वाद छोड़ि निजस्वभाव भावहिका स्वाद भया लेहै (लेता है), यहू विकल्प; भोग शक्तिनिकौं सम्यग् इतना कहिये सो 'निर्विकल्प' (है)। यौं करि सम्यक्त्व गुणकी सर्व शक्ति, ज्ञानादि गुणन ही की केतीयेक शक्तिएँ भई सम्यग्रूप, सो यहू सम्यग् भेदाभेद विकल्पस्यौं दिखाया। जब इन्हैं को (इनका) अभेद पुंजरूप-गांठिरूप-चेतना, सो चेतना केतीयेक सम्यग्रूप भई इतना कहिये। चेतना केतीयेक सम्यग्रूप उपजी, यहू चेतना सम्यग्सौं अभेद-निर्भेद (है) अवरु ऐसें इस चेतनाकौं सम्यग्रूप उपजतैं जीव वस्तुकौं सम्यग्रूप उपजा कहिये, केवल निजरूप भया कहिये। जैसा आप था तैसा ही आपैं आप प्रगट्या, मूलस्वरूप परनम्यां। अवरु ऐसैं भी कथन कहिये।

अनादिसौं विकाररूप अटवी विषै भ्रमतैं २ अब सो यहू जीववस्तु निज सम्यग्रूप गेह (घर) विषै आनि वस्या। इस जीवका था मूल सम्यग्भाव, सो मूल अपना भाव रहि गया था सो अब प्रगटतैं कहिये—

अब जीव अपने सम्यग् स्वभावरूप समुद्र-विषै आपही मगन भया। अवरु यहू जीव सम्यग् अपने भाव प्रगटनैं तैं, यहु सम्यग्भाव जीवकौं सर्व अवरु विकल्पतैं जुदा दिखावै है। एक गुणकी अपेक्षा अवरु सर्व अनंत गुणहि का पुंज सो वस्तु कहिये। तिस वस्तुकौं ज्ञान तो जानैं है, दर्शन तो देखै है, चारित्र तो स्थिरीभूत होइकर (होकर) आचरै है, एई (ये) यौंकरि कहिये:-

अवरु ज्ञान दर्शन चारित्ररूप हम हैं वा चेतनाईरूप हम हैं, यहू विकाररूप हम नाही, सिद्ध समान हम है, बंध मुक्ति आश्रव संवर रूप हम नांही, हम अब जागे हमारी नींद गई। हम अपने एक स्वरूपकौं अनुभवैं हैं, हम सर्वाङ्ग स्वरूपकौं अनुभवै हैं, हम इह संसार सौं जुदे भए, हम स्वरूपरूप गज (हाथी) ऊपरि आव (आकर) आरूढ़ भए, हम अशुद्ध भाव पट खोलि स्वरूप गेह (घर) विषै प्रवेश कीया, हम तमाशगीर (दर्शक) अन (इन) संसार परिणामनि के भए, इन्द्रियादि भाव हमारा स्वरूप नाही। अभेदरूपकौं हम अनुभवैं हैं, हम निर्विकल्पकौं

१. जोधपुर वाली प्रतिमें यह पाठ अधिक है।

आचरैं हैं, निश्चय, व्यवहार, नय, प्रमाण निक्षेपादि हमारे इव (अब) नांही, ज्ञानादि गुण ही की परजाय (पर्याय) भेद भाव है सो हमारे गुण स्वरूप ही विषै भेदभाव नाहीं। गुणस्थानादि भाव स्वरूप हमारा नांही, अब हम आपैं आप देखैं-जानैं हैं; हम अब स्वभाव भाव जुदा कीया, परभाव जुदा कीया, हम अमर हैं, ऐसैं अनेक २ प्रकारि करि मन वचन विषै सम्यग् भावकी स्तुति उपजै है।

बारंबार मनविषै चिंतवै है, यौं विचरता रति मानैं है, पैं यहू सर्व मन वचनकी विकल्प-चिंता-भाव-का प्रवर्तना है। मन वचनके विकल्प है। परंतु सम्यग्भावका तातपर्ज (तात्पर्य) इतना ही है।

ज्ञान परिणाम तो सम्यग्ज्ञान परनामरूप वर्गै हैं (प्रवर्तते हैं)। दर्शन परिणाम तो केवल सम्यग्दर्शन परिणामरूप वर्गै है। चारित्र परिणाम तो केवल एक सम्यग् स्वचारित्र परनामरूप वर्गै है। [1]भोग परिणाम तो एक सम्यग् स्वभोगरूप वर्गै है। यौं अपने २ स्वभावरूप साक्षात् प्रगट भए परनाम प्रवर्त्तैं है।

---

१. यह पंक्ति जोधपुर वाली प्रति में अधिक है।

विशेषकरि ज्ञानादिगुण सामान्यकरि एक चेतना ही यौं स्वभावरूप प्रवर्तै है। यौं सम्यग्भाव टंकोत्कीर्ण निश्चलरूप धरै परनमैं है। इतनेस्यौं जु कछु अवरु भांतिकरि कहिये-सो सब दोष विकलप लगै है, निस्संदेह करि जानना। क्यौं (कि) तिस सम्यग्भाव प्रगट परनमनें विषै अवरु कछु कछु परमाणुमात्रका भी लगाव कछु नांही. एक केवल आपैं आप स्वरूप परनाम प्रवाह चल्या जाइ है अवरु तहां बात कछु नांही, अवरु किछु विकलप नांही, ऐसी सम्यग्धारा सम्यग्दृष्टि (के) द्रव्य विषै प्रगटी है। तिनके तो यौं ही प्रवर्तै है। परंतु अवरु भांति करि जु कछु स्वरूपकौं कहिये, सो सर्वदोष विकलप (रूप) मन-वचनके हैं।[1]

इति सम्यग्भावस्य यथाऽस्ति तथाऽवलोकनाधिकारः

सम्यक् निर्णय

अथ अन्यत् किंचित्. न द्रव्य ज्यौंका त्यौं ही जानना, यहूं सम्यक् होना जीवकै ऐसा जानना जैसैं बावलेस्यौं स्याणां हवणां इतना ही दृष्टांत नीकैं जानना। अवरु ज्ञानादि सम्यक् का एकरस अनेकरस एक ही पिंड, दृष्टान्त-जैसैं पांच रसहुं

---

१. यह दो पंक्ति देहली वाली प्रति में अधिक हैं।

की समवाय (मिलाय) करि एक बनी गुटिका, तिस गुटिकाकौं अब विचारहु तो यौं पांच रस ही कौं देखिए तो एक २ रस अपने अपने ही स्वादकौं लीयें सर्वथा अवरु रसतैं जुदे जुदे प्रवर्तें है। किसी रसका स्वाद किसी रसके स्वादस्यौं मिलता नाहीं। कबहूं प्रतक्ष रस २ अपने २ स्वादरूप अचल देखिए है। अवरु इस तरफ गुटिका भावकौं जु देखिए-तो तिस गुटिका भावसौं वाहिर (बाह्य) रस कोई नांही, जो रस है सो गुटिका भावविषै तिष्ठै है। तिन पांच रसहि का जु मेलापक पुंज भाव, सो ही गोली, तिन पांच रस ही का पिंड (पुंज) सो ही गो ऐसैं कहने करि जो भेद विकल्प सा आवै है, परंतु एक ही समय पांचौं रसका भाव एकांत गोलीका भाव है। सो प्रतिछ (प्रत्यक्ष) सूधी (शुद्ध) दृष्टि करि देखना दृष्टान्त, पिछैं, यहू दार्ष्टांत देखना।

ऐसैं सम्यक्त्वगुण, सम्यग्ज्ञानादि गुणहिकी शक्ति भई सम्यग्रूप, तेई (वेही) पांचूं गुण अपने २ सम्यग्रूपकौं जुदे २ परनमैं हैं। किसी गुणका सम्यग् भाव किसी अवरु गुणके सम्यग् भावस्यौं मिलिता नांही। सम्यक्त्वका

जु वस्तुआकारश्रद्धान सम्यग् है, सो ही श्रद्धान सम्यग् परिनमैं है। ज्ञानशक्तिनिका जु आकार जानना, इतना सम्यग् भाव, सोई (वही आकार) जानना, (सो) सम्यग् भाव जुदाई परनमैं है। दर्शन शक्तिनिका जु वस्तु देखना, सम्यग् इतना भाव सोई (वही) वस्तु देखना, सम्यग् जुदाई परिनमैं है। चारित्र शक्तिनिका, जु निज वस्तुके स्वभावविषै स्थिरता-विश्राम-आचरना सम्यग् भाव इतनाई, सोई चारित्रका सम्यग्भाव जुदाई परनमैं है। भोग शक्तिनिका, जु निज वस्तुके स्वभावही विषै आस्वाद सम्यग् इतनाई भाव, सोई जुदाई परनमैं है। एई (ये) पांचौं सम्यग् अपने अपने भावकरि परणमैं हैं। कोई किसूं मध्य मिलि जाता नांही, अपने २ सम्यग्भावसौं टलते भी नांही, ज्यौं के त्यौं जुदें २ परनमैं हैं। यौं तो सम्यग् भेदाभेद भावकौं जुदे २ प्रवर्तैं हैं। अवरु जो इस तरफ देखिये—

चेतनारूप सम्यक्भाव, तो तिस चेतना भावसौं ज्ञानादि सम्यग् कोई जुदा नांही, बाहरि कोई नांही, सर्व सम्यग् चेतनाभाव विषै वसैं है। इन पांचौं ज्ञानादि सम्यग्का जु पुंज स्थान सोई चेतनासम्यग् है। तिन पांचौं ज्ञानादि भ.व

मिलिकरि निपजी (उत्पन्न हुई) एक चेतना सम्यग्भाव, पांचौं सम्यक्भाव ही का एक समवाय एक समय विषै एक वार परनमैं है, तिसकै चेतना सम्यग्भाव कहिये तिस पुंजकौं । ऐसे करि इन पांचौं भावही कौं एक चेतना सम्यग्भाव ही करि देखिये हैं । भेद सम्यग्भाव, अभेद सम्यग्भाव कहनैं करि तो जुदे देखिये हैं, परंतु ज्ञान दर्शन विषै एक ही बार दोन्यौं भाव प्रतिबिम्बै है। तिन पांचौं सम्यक् करि चेतना सम्यग्, चेतना-सम्यग् करि तो पांचौंसम्यग् कही है ।

अवरु कोई अजानी जुदे गुदे दोनौं मानैं, तिन अज्ञानी दोनौं भाव नाश कीये, कछु वस्तु न राखी जैसैं तताई (उष्णता) भाव जुदा और ठौर कहिये, आगि भाव जुदा और ठौर कहिये, तब तहां वस्तु देखिये नांही, शून्य देखिये। अवरु जानी तताई भेदभाव, आगि अभेद भाव एक ही बार जानैं अवरु यौं ही है वस्तु । ऐसैं करि भेद सम्यग्भाव, अभेद सम्यग्भाव एक ही स्थान है, यौं ही वस्तु है, निस्संदेह, ज्ञानविषै प्रतिबिंबै हैं । ऐसे करि भेद सम्यग्भाव, अभेद सम्यग्भाव (दोनौं) एक ही स्थान भए परनमैं हैं।

जब जिसी काल जिसी जीव वस्तुकौं यह सम्यग्भाव प्रगट्या, सोई जीव सत्व (प्राणी) तिसी काल भेदसम्यग्भाव, अभेदसम्यक् भाव एक स्थान ही परनमैं है, सम्यगूरूप परनमैं है। तेई (वेही) जीव सम्यग्भावकरि भलै शोभै है।

प्रथम ही प्रथम जब ऐसैं केतायेक सम्यग्भावकौं धरि (धारण करके) जीव वस्तु प्रगट परनम्या, तितना भाव स्व-आपै आप-केवल निर्विकल्प, निस्संदेह करि, निज स्वरूप सिद्ध साक्षात् आत्मा प्रगटी। इतनें ही भावस्यौं आत्मा निज स्वभाव विषै इतनी स्थगित भई।

अवरु जितनी आत्मा जब स्वभावरूप पहिलइ प्रगटी, जितनेक (जितनी मात्रामें) स्वरूप भावकी बानगी प्रथम प्रगटी, तितनी स्वरूप वानगी प्रगटनें करि जु (जो) अनादिस्यौं जीव वस्तु स्वभाव रूपसौं असिद्ध होइ रह्या था-निज स्वधर्मस्यौं च्युत होइ रह्या था सोई निज स्वभाव जाति जीव वस्तुकौं अब सिद्ध भई, जीव वस्तुका स्वधर्मने आपा दिखाया।

इस जीव वस्तुका मूल निज वस्तु स्वभाव मैं हौं (हूँ)। वस्तु स्वधर्मकरि वस्तु साधी गई,

मूल जीव वस्तु स्वभावभाव यह्व है। इतनी स्वभाव बानगी के निकसतैं (प्रगट होने से) पहिलै यह्व भया।

अवरु एक कोई किनहू प्रश्न करी-जैसैं सम्यक्त्व गुण सम्यग् भये कहे, तैसैं ज्ञानादि गुण सम्यग् न कहे, तिन ज्ञानादि गुण ही की केतीयेक शक्ति सम्यक् भई कही, सो क्या भेद हैं? उत्तर—

इहां सम्यक्त्व गुण तो सर्व सम्यक् भया अवरु ज्ञानादिकनि की केतीयेक २ शक्ति सम्यग्रूप भई अवरु ज्ञानादि गुणहि की (केतीयेक-शक्ति) अबुद्धिरूप मैलि होइ रही है अवरु चीण-मोह कालके अंत विषै ज्ञानादि गुण ही की सर्व अनंतशक्ति सम्यग्रूप होयगी, तब ज्ञानादि गुण सर्व सम्यग् भये कहियेंगे।

पुनः अन्यत् प्रश्न–जो ज्ञा(ना)दि गुण सर्व सम्यग् चीणमोह कालके अंत विषै होइगे, तो तहां द्रव्यकौं ही सम्यक् भया क्यों न कहा? उत्तर—

भइया! तिसकाल विषै गुण तो सर्व, शक्ति करि सर्व गुण सम्यक् भये, परंतु द्रव्यके प्रदेश-निका रह्या जु कंप विकार तिसस्यौं भी कछु

द्रव्य मैला है। अवरु सो भी अजोग्य (अयोगी) कालके अंत दूरि होइगा विकार, तब द्रव्य सर्वथा सम्यक्रूप होइगा। त्रैलोक्य ऊपर केवल एक जीव (द्रव्य) आपैं आप (द्रव्य) तिष्टैगा। इति सम्यक् निर्णयः।

अथ साधक साध्य भाव कथ्यते।

जो साधै ते साधक भाव तिसीकौं जानना। जिस भाव प्रवर्तै विना अवरु अगला भाव न प्रवर्तै, जु उस ही भावका प्रवर्त्तना काल होइ-प्रवर्त्या होई-तब ही तो वहु (तो वहु) अगले भावका प्रवर्तना अवश्य सधै है। अवरु (अन्य) भाव प्रवर्तै वहु भाव न सधै। अवरु कोई अज्ञानी यौं जानैंगा-तिस आगले भावकौं यहु भाव अपने बलकरि प्रवर्त्तावै है-यहु ज़ोरावरी परणमावै है-ऐसैं साधक भाव मानैं, सो यौं तो अनर्थ। साधक भाव इतना ही जाणणां वहु भाव अपने बलस्यौं प्रवर्तै है; परंतु यहु है, उस भाव प्रवर्त्ततैं तिस काल इस भावका भी प्रवर्त्तना होइ है। ऐसा जु वहु भाव का हवना, इस हवनेंके शाषीभूत (साक्षीभूत) सो अवश्य होइ है, सो इतना साधकभाव संज्ञा उस भावकौं कहिये, इस अवसर विषै जानना।

जैसैं दिन दुपहररूप जब ही प्रवर्तैं है तब ही दुपहरिया फूल विकस्वर (खिलनेका) रूप कार्ज (कार्य) कौं प्रवर्तैं है । इहां दुपहरीय फूल विकस्वररूप हवनेंकौं, दुपहरा दिनका हवनां साक्षीभूत प्रत्यक्ष अवश्य देखना, ऐसा भाव साधक जानना ।

साध्यका अर्थ-जो साधियै अथवा सद्धै (साधा जाय) तिसकौं साध्य संज्ञा कहिये । जहां उस भावके होतैं अवरु भाव अवश्य ही प्रवर्त्तैं-उस भावके हवनेंतैं इस भावका हवनां अवश्य सधै है, तिसतैं इस भावकौं साध्य कहिये। जैसे दुपहर हवना साधक भावतै दुपहरीयै फूलका विकस्वरपनां का हवनेंका काम सधै है, इतने भावस्यौं दुपहरीयै फूलका विकस्वर हवनां सो साध्य कहिये ।

अथ अग्रे साधक साध्यभावना उदाहरणं कथ्यते-

एक क्षेत्रावगाही पुद्गलकर्महिका सहज ही उदय स्थितिकौं होइ है, सो साधक स्थान जानना, तहां तब लगु तिस हवनेंकी स्थितिस्यौं चित्‌विकार हवनेंकी प्रवर्तना पाइए है। सो साध्य भेदकौं जानना ।

सम्यक्त्व विकार साधक, वहिरात्मा साध्य, प्रथम सम्यक् भाव हूवनां जहांसाधक है, तहां वस्तु स्व स्वभाव जीति सिद्धि हवनां साध्य है। जहाँ शुद्धोपयोग परणति हवनां साधक है, तहां परमात्मस्वरूप वस्तु का हवाना साध्यभाव है। जहां सम्यग्दृष्टिके व्यवहार रत्नत्रयका जुगपत् (युगपत्-एकसाथ) हवानां साधक है, तहां निश्चय रत्नत्रय साध्य है। सम्यग्दृष्टिके जहाँ विरतरूप व्यवहार परनति हवानां साधक है, तहां चारित्र शक्ति मुख्य स्वरूप हवाना साध्य है। देव, गुरु, शास्त्रभक्ति-विनय-नमस्कारादि भाव जहां साधक है, तहाँ विषय-कषायादि भावहि रुधौं (रोककर) मन परिणतिकी स्थिरता भाव साध्य है। जहाँ एक शुभोपयोग व्यवहार परिणति (की) रीत हवना साधक है, तहाँ परंपरा मोच्च परिणति हवनी साध्य है। जहां अन्तरात्मरूप जीव द्रव्य साधक है, तहां अभेद आप ही जीव द्रव्य परमात्मरूप साध्य होइ है। जहां ज्ञानादि शक्ति मोक्ष मार्गरूप करि साधक है, तहां अभेद आप ही ज्ञानादि गुण मोक्षरूप साध्य होइ है। जहां जघन्य ज्ञानादि भाव साधक है, तहां अभेद आप ही वेई (उस ही) ज्ञानादि

गुणहि का उत्कृष्ट भाव साध्य है। जहां ज्ञानादि स्तोक निश्चय परणति करि साधक है, तहां अभेद आपही बहुत निश्चय परिणतिरूप करि ज्ञानादि गुण साध्य होइ है जहां सम्यक्त्वी जीव साधक है, तहां तिस जीवके सम्यग्ज्ञान, दर्शन, सम्यक्चारित्र साध्य है। जहां गुण मोक्ष साधक है, तहां द्रव्य मोक्ष साध्य है। जहां क्षपकश्रेणि चढणां साधक है, तहां तदभाव (उसी भव से) साक्षात् मोक्ष साध्य है। अवरु जहां "द्रव्यत भवित जंति" व्यवहार साधक है, तहां साक्षात् मोक्ष साध्य है। जहां भवितमनादि रीति विलय साधक है, तहां साक्षात् परमात्मा केवलरूप हवना साध्य है। जहां पौद्गलिक कर्म खिरणा साधक है, तहां चित्विकार का विलयहवना साध्य है जहां परमाणु मात्र परिग्रह प्रपंच साधक है, तहां ममता भाव साध्य है। जहां मिथ्यादृष्टि हवना साधक है, तहां संसार भ्रमण हवनां साध्य है। जहां सम्यग्दृष्टि हवना साधक है, तहां मोक्ष पद हवना साध्य है। जहां काललब्धि साधक है, तहां द्रव्यकौ तैसा ही भाव हवना

१. अनुभवप्रकाशकी मुद्रित प्रति में इस पंक्ति की जगह "जहां दर्वित भावित यति" पाठ पाया जाता है।

साध्य है। यौं करि साधक साध्य भाव भेद अभेद रूपकरि बहुत प्रकार करि जानना।

इति साधकसाध्य अधिकार:

अथ मोक्षमार्ग अधिकार:—

जो पहिले ही कालब्धि पाइकरि सम्यक्गुण-ज्ञान, दर्शन, चारित्र, परमानन्द, भोगादि गुण-निकी शक्ति निर्मलरूप होइ प्रवर्ती जितनेंक, तितनेंक जीव द्रव्य निज धर्म करि सिद्ध भया। तहांतैं जीवकौं मुख्यतो सम्यग्दृष्टि संज्ञा कहिये अथवा ज्ञानी भी कहिये। अवरु दर्शन, चारित्रादि स्वभाव संज्ञा स्यौं भी जीवकौं कहिये तो कोई दूषण तो नांही, पैं (परंतु) लोकोक्ति विषै तहां सम्यग्दृष्टि जीवकौं (उपरोक्त) मुख्यसंज्ञाकरि कहिये।

ऐसे सम्यग्दृष्टि जीवके ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि जो स्वभावरूप प्रगटे जहां स्यौं, तहां स्यौं आगे मोक्षमार्ग चल्या- प्रवर्त्यां। पैं (परंतु) एक (बात) है, तहांस्यौं मुख्य चारित्र गुणकी शक्तिनि का स्वभाव हवनां लेना ज्यवरा (हुआ)। तहां मन वचन कायका पहिले कहिये हैं—

मिथ्यात्व गुणस्थान विषै तो एक मुख्य विषयकषायादि अनर्थ पापरूप अशुभोपयोग मनादि प्रवर्त्तै है। अवरु चौथे गुणस्थानसौं देव गुरु, शास्त्रादि प्रशस्तनि विषै भक्ति विनयरूप शुभोपयोगरूप-मनादि (की) वृत्ति मुख्य सी होइ है अवरु विषय कषाय हिंसादिरूप-अशुभोपयोगरूप-मनादि (की) वृत्ति यहू भी होइ है अपने २ काल विषै।

आगे पांचमें गुणस्थान विषै विरति-व्रतादि-रूप शुभोपयोगरूप मनादि (की) वृत्ति मुख्य प्रवर्त्तै है। अवरु कथहू गवनसा (गौणरूपसे) अशुभोपयोग रूप भी मनादि प्रवर्त्तै है आगैं छटें गुणस्थान विषै यहू भोग, कांक्षा, कषाय, हिंसादिरूप अशुभोपयोगरूप मनादि (की) वृत्ति सर्व नाश-सी भई। अवरु सर्वविरति सर्वव्रत निर्ग्रंथ क्रिया विषै, य (जो) सर्व संयम, द्वादशांग अभ्यास, देव गुरु शास्त्र भक्ति क्रियादिरूप, एक केवल ऐसा शुभोपयोग-रूप मनादि (की) वृत्ति प्रवर्त्तै है। एव अवरु (एक और) इहां भेद जानना- चौथे गुणस्थान सौं लेय छठे ताईं (गुणस्थान तक)

स्वस्वभाव अनुभवरूप शुद्धोपयोगकी भी किछु २ कदाचित् २ मनकी वृत्ति होइ है, सो प्रवर्त्तती जाननी ।

आगै सातमैं गुणस्थान विषै शुभोगयोगरूप मनादि (की) वृत्ति नाश होइ (है) अवरु शुद्धो-पयोग-स्वअनुभव-रूप केवल एक उपज्या तिस-का व्यवरा (विवरण)

इस कायकी चेष्टा हलन, चलन, गमन, उठना, बैठना, कांपना, फरकना, जंभाई, छींक उद्गारादि कायचेष्टा सव रह गई (नष्ट हुई)। आप ही काउसग्गी (कायोत्सर्गी), पद्मासनी जैसे काठकी प्रतिमा होइ, तैसैं पद्मासन अथवा कावसग्ग (कायोत्सर्ग) आकार (हुआ)। काय, इंद्रिय, रीति, विषयवांछा रह गई (नष्ट हो-गई)। अडोल (निश्चल) काष्ट प्रतिमा अवरु इस-में कछु भेद नांही काष्ट प्रतिमा वत्। कायकी रीत तो तहां ऐसी भई जो कायकी रीत काष्ठवत् भई, तो तहां वचन रीत तो सहज ही कीली गई, जो वह्न काठकी प्रतिमा बोलै तो तहां यहु अप्रमत्त साधु भी बोलै, आवाची काष्ट प्रतिमा वत् ।

अवरु इहां द्रव्यत मन अष्ट दलरूप सो भी निकंप होइ गया, द्रव्यत पौद्गलिक मनादिक (की) रीति तो यौं करि सहज ही स्थगित भई। अवरु जीवके ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि रूप भये विषय ही ऊपरि इंद्रवत्। तातैं काय इंद्री रूप प्रवर्त्ता थे, ते काय द्रियोंका अभ्यास मार्ग प्रवर्त्तीना छोड़ि करि स्ववस्तु भाव एक अभ्यास-रूप मार्ग विषै प्रवर्ती।

अवरु भी जीवके ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि विभाव रूप भये, ए वचन ही विषय (में) प्रवर्तैं थे, तिन परनामहु भी वचन अभ्यास मार्ग छोड़ि करि अवरु एक स्ववस्तु भाव अभ्यासरूप मार्ग विषै परनमैं प्रवर्त्तैं। अवरु भी-मन अष्ट दल कवल (कमल) स्थान विषै जीवके ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि विकारभाव भए-अनेक इष्ट अनिष्ट, लाभ-अलाभ, अशुभ-शुभोपयोगादि भाव, विकल्प समूहहिविषै अभ्यास चंचल रूप भया भावमन प्रवर्त्तैं था, सो भावमन एक स्ववस्तु भाव सेवनेको अनुभवरूप प्रवर्त्या, अवर सर्व विकल्प चिंतासे रहि गया (मुक्त हुआ), एक स्ववस्तु भाव अनुभव [भव] नेंको प्रवर्त्त्या। यौं करि

ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि विकाररूप मन वचन काय व्यवहार परिणतिरूप रहि गया (नष्ट हो गया), एक स्ववस्तु भाव सेवनरूप अनुभवनरूप निश्चय संयुक्त भई; तहां सोई संजमी कहिये. अवरु सो ही शुद्धोपयोगी, अवरु प्रधान अनुभवी कहिये । तहां परभावहि का सेवना सर्व मिटि गया, व्यवहार परिणतिका एक केवल आतम-स्वरूप अनुभव निश्चय करि परिणति प्रवर्त्ती। ऐसे यह मनादि (की) वृत्तिको स्वरूप विषै एकाग्रता-एक रूप-सो शुद्धोपयोग एक रूप उपज्या।

अवरु जहां यहु शुद्धोपयोग उपज्या, तहां जसाजस (यश अपयश) लाभाऽलाभ, इष्टा-निष्टादि सर्व भावहि विषै समान भाव होइ गया, कोई आकुलता रही नहीं, सामान्यपना कहिये।

अवरु यहु जहां शुद्धोपयोग प्रगट्या, तहां से परमात्म सुख (का) आस्वाद अतीन्द्रिय (रूप) प्रगटता जाइ है । ऐसे जहां शुद्धोपयोगका कारण उपज्या, तब ही से साक्षात् मोक्षमार्ग मुख्यपनैं करि कहिये। अवरु इहां तैं (आगे) चारित्र गुणकी [मोक्ष मार्ग] मुख्यता से मोक्षमार्ग जानना।

सातमां गुणस्थान, तहां से जु जु आगेका काल आवै है, तिस २ कालके विषै अनेक २ चारित्रादि गुण ही की शक्ति, पुद्गलवर्गणा (के) आच्छादन से, चित्‌विकार से मोक्ष होइ २ करि साक्षात् निश्चय निज स्वभावरूप शक्ति होती जाइ है। मौं (इसी प्रकार और भी) आगे ज्यों ज्यों काल आवै है, त्यौं २ अनेक २ चारित्रादि गुण ही की (शक्ति), पुद्गलवर्गणा आच्छादन, चित्‌विकार से मोक्ष होइ २ करि साक्षात् निज २ स्वभावरूप शक्ति होती जाइ है। यौं करि समय २ विषैं चारित्र शक्तिनिका मोक्षरूप हवनेका प्रवाह लग्या समय २ बधती (बढ़त) जाइ है।

शुद्ध शक्ति सो यह मोक्षमार्ग अवस्था जाननी। सो यह मोक्षमार्ग होते-प्रवर्तें २-जब क्षीणमोह अवस्था आई, तहां जु थी स्ववस्तु अभ्यासरूप शुद्धोपयोग मनादि (की) रीति, परिणति, ज्ञान, दर्शन, चारित्रादिशक्ति; अवरु किंचित् शक्ति अबुद्धरूप व्यवहार परिणति ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि शक्ति, ते (वे) शक्ति सर्वथा मोक्ष होइ करि निजजाति स्वभावरूप निश्चय परिणतिकौं होती २ चली। आत्म

अभ्यास भाव भी मोक्ष होते २ तिस क्षीणमोह अवस्थाके अंतके समय ही विषै, चारित्र गुणकी अनंतहू शक्ति, मोह पुद्गल आच्छादन विकारसे मोक्ष होइ सर्व शक्ति निजवस्तु स्वभावरूप भई, निजवस्तु स्वभाव ( ) ही तिष्टै (ठहरकर) स्थिरीभूत भई अनंत ही चारित्र गुणकी शक्ति तव ही चारित्र गुण मोक्षरूप उपज्या कहिये।

तव ही परमानंद भोग गुणकी अनंत ही शक्ति मोक्ष होइ सर्व शक्ति निज वस्तु स्वभाव आस्वाद भोगरूप उपजी, तहां भोग गुण मोक्षरूप उपज्या कहिये। अवरु तव ही ज्ञान, दर्शन, वीर्जादि (वीर्यादि) गुण ही की अनंत ही २ मोक्षरूप होइ निवरी, तिनकी स्तुति—

जावंत लोकालोक (का) प्रतच्छ (प्रत्यक्ष) ज्ञायक दर्शक भया, सर्वज्ञ-सर्व दर्शी भया, लोकालोक आनि प्रतिबिम्ब्या, अतीत अनागत वर्तमानकी अनंत २ पर्याय एक ही वार कीलित (संकलित) भई सर्व प्रत्यक्षतया, ज्ञान-दर्शन संपूर्ण स्वरूपकौं भए तहां ज्ञान, दर्शन, वीर्यादि गुण मोक्षरूप उपजे कहे यौंकरि एक भवायता-रीकौं।

अप्रमत्त अवस्था से प्रधान होइकरि चल्या था चारित्रादि गुण ही की शक्तिनिका मोक्षरूप हवनेका मार्ग, सोई मार्ग इहां परिपूर्ण होइ निवरया। सोई चारित्रादि गुण मोक्षरूप निष्पन्न होइ निवरे. सो तहां गुण मोक्ष होइ निवरया। इति गुण मोक्षमार्ग विवरणं।

गुण मोक्षमार्गका चौथे से आरंभ भया था बारमेके अंत लगु संपूर्ण भया।

अन्तरावस्था कथन।

ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि शक्तिनि का कर्मानुभवस्यौं भेदभाव हवना-जुदा हवना, ज्ञान दर्शन चारित्रादि शक्तिनिका स्वरूपके विषै आवना, अवरु तीनोंकी शक्तिनिका विकाररूप नाश हवना, ज्ञान दर्शन चारित्रादि शक्तिनिकी निश्चय परिणति हवना, ज्ञान दर्शन चारित्रादि शक्तिनिकी व्यवहार परिणतिका विलय हवना, ज्ञान दर्शन चारित्रादि शक्तिनिकी शुद्धताकी उत्कृष्ट वृद्धि हवना, ज्ञान दर्शन चारित्रादि शक्तिनिकी अशुद्धताकी हानि हवना, ज्ञान गुणकी शक्तिनिका एक आकाररूप जाननें (रूप) सम्यक् हवना, दर्शन गुणकी शक्तिनिका एक अनाकार

जाननेरूप सम्यक् हवना, चारित्र गुणकी शक्तिनिका एक स्ववस्तु स्वरूप विषै आचरण, स्थिरता (और) विश्राम सम्यक्रूप हवना, इत्यादि जीवके सर्व भाव ही का चौथे स्थान (गुणस्थान) स्यौं आरंभ होइ है अवरु बारमैं स्थान (गुणस्थान) के अंत लगु संपूर्ण भाव होइ निवैरै है ।

निस्संदेह, ज्ञान दर्शन चारित्रादि गुण ही का जघन्य भाव, ज्ञान दर्शन चारित्रादि शक्तिनिका साक्षात् क्षयोपशम हवनरूप भाव, अंतरात्म भाव, सविकल्प भाव, स्वरूपशक्ति परिणाम, विकारशक्ति परिनामि करि मिश्र जीव, द्रव्य भाव इत्यादि भावरूप जीव चौथे स्थानते लेय बारमैं स्थान लगुताई रहे है।

चौथे स्थानतैं जव बुद्धिरूप, चारित्र गुणकी जे जे शक्ति निर्विकल्प राग-द्वेष विकारसौं निवर्ति (निवृत्त) होइ २, साक्षात् निज स्वरूप होइ केवल परनमैं है, केवल स्वरूपरूप होइ प्रवर्तै है; तिस काल तिन शक्ति ही की तो कछु आस्रव बंध भावकी बातैं नहीं, ते शक्ति तो स्वरूप करि सिद्ध होइ जाइ है। तिसकाल तिन शक्ति ही

कौं तो कछु विकल्प लगता ही नहीं पैं (परंतु) चौथे स्थानतैं सम्यग्दृष्टिके अवरु चारित्र गुणकी शक्ति बुद्धिरूप जब विकल्प होइ परनवै है— विषय कषाय भोग सेवनरूप इष्टरुचि, अनिष्ट अरुचि, हिंसारूप रति, अरतिरूप, अविरतिरूप, परिग्रहविकल्परूपादि करि अथवा शुभोपयोग विकल्परूपादिकरि, बुद्धिरूप जे जब शक्ति परनवैं है, (तब) ऐसे परावलंबन चंचलतारूप मैली भीहोइ है, तो भी तिन शक्तिनिकरि (ज्ञानी) आश्रवबंध विकारकौं न (नहीं) उपजइ (उत्पन्न करता है) काहे ते ? (क्योंकि) सम्यग्दृष्टी अपनी विकल्परूप बुद्धिपूर्वक चारित्र चेष्टाकौं जाननैंकौं समर्थ है, तिस चेष्टाको जानते ही सम्यग्दृष्टीको विषय भोगादिभाव, विकाररूप जुदा ही प्रतिबिंबै है अवरु तिस विषै चेतना स्वभाव भाव जुदा प्रवर्तै है । एक ही कालविषैं सम्यक्ज्ञानको जुदे जुदे प्रतक्ष होइ है। इस कारणसे तिस बुद्धिरूप चारित्र शक्तिनि विषै, राग द्वेष मोह विकार नहीं पोहता (घुस जाता) ।

यौं करि सम्यग्दृष्टी विकल्परूप बुद्धिरूप परणतिसे भी सर्वथा बारमैं स्थान लगि निराश्रव

निर्वंध प्रवर्त्तै है। अवरु तिसी सम्यग्दृष्टीके चेतना विषय, कषाय, भोग, हिंसा, रति, अरति आदि अवुद्धिरूप परनवैं है सो, जघन्य ज्ञान सम्यग्मति, सम्यग्श्रुति गोचर नहीं आवै है, अज्ञानको लिये है, तिसतैं अवुद्धि शक्ति ही विषै राग, द्वेष, मोह विद्यमान है। तिसतैं अवुद्धि करि किंचिन्मात्र चौथेसे लेकर दशमें (गुण) स्थानताईं आश्रव बंध भाव उपजै है। व्यवहार परिणति, अशुद्ध परणति, अवुद्धि अवरु वुद्धिरूप परिणति (रूप) जीवके ज्ञानादि गुण, दशमें बारमें (गुण) स्थान लगि परनवैं हैं।

इति अंतर्व्यवस्था कथनं।

सम्यग्दृष्टि सामान्यविशेषाधिकार

अवरु सम्यग्दृष्टि जीवके स्वस्वरूप निर्विकल्प अनुभव-वुद्धि-परिणति विषै, एक परमाणु भी रागादि विकार नांही. अवरु सामान्य करि सम्यग्दृष्टिको, ज्ञानीको, चारित्रीको यौंही कहना आवै। मुख्य (रूप से) निर्बंध, निराश्रव, निष्परिग्रह, शुद्ध, भिन्न, परमाणुमात्र रागादि रहित कहिये। (तथा वे सम्यग्दृष्टि जीव) शुद्ध वुद्ध कहे जाइ हैं, विकारका हवना न आवै। क्यौंही

(क्योंकि) जस सामान्यकरि सर्व चेतन द्रव्य वंदनीक ही आवै, निंदित कोई न आवै। अवरु जब विशेष भेद कीजै-ज्ञान, दर्शन, चारित्र (आदि) जघन्य करि (जघन्यहोने से) सम्यग्दृष्टिकौं कथंचित् अबुद्धि प्रकार करि आश्रव, बंध, सरागादि विकार मिश्रित् जीव द्रव्य कहिये। अवरु ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि उत्कृष्टकरि सम्यग्दृष्टिकौं सर्वथा (सर्व) प्रकार-करि साक्षात् निर्बंध, निराश्रव वीतरागी, निष्परि-ग्रही जीव द्रव्य कहिये। जैसे अडीके आंवहि का भेदकरि निर्णय कीजे, तब कोई आव किसी अंग से कचेपने करि मिश्रित भी कहिये अवरु सामान्यसौं तेई (वे ही) आंव सर्वथा पक्के कहिये है, निस्संदेह ।

इति सम्यग्दृष्टि सामान्यविशेषाधिकारः।

भो भव्य! तू जानौं (कि)-जो पौद्गलिक पुण्य, पाप, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्षजु है तिनकौं तो जीव त्रिकाल विषै कबहू छूवता भी नहीं कछु, अवरु जद्यपि (यद्यपि) एक क्षेत्रा-वगाही भी है तथापि जीवने वै (उनको) कबहूँ भीटै (छूवे) नाही ।

अवरु ए जु है दशधा परिग्रह पुद्गल, गृह (घर) क्षेत्र, बाग, नगर, कूप, वापी, तडाग, नदी

आदि २ जेतेक पुद्गल, माता, पिता, कलत्र , पुत्र, पुत्री, वधू, बंधु, स्वजन, मित्र आदि जावंत, सर्प, सिंह, व्याघ्र, गज महिष आदि जावंत दुष्ट, अक्षर, शब्द, अनक्षर शब्द आदि जावंत शब्द; खानपान, स्नान,भोग, संजोग वियोग, क्रिया जावंत, परिग्रह मिलाप सो बड़ा परिग्रह, नाश सो दलिद्र (दरिद्र) आदि क्रिया जावंत, चलना बैठना. हलना. बोलना. कांपना आदि क्रिया जावंत, लड़ना. भिड़ना. चढ़ना. उतरना. कूदना. नाचना. खेलना गावना. बजावना आदि जावंत क्रिया. ऐसे २ भी तू सर्व पुद्गल स्कंध ही का खेल जानों। इनको भी कब ही इन जीवनैं भीटै (स्पर्श किये) नहीं त्रिकाल विषै (में भी). यह तू निस्संदेह जान।

जैसे २ कालके निमित्तसे ए पुद्गल आपै आवै. आपै जाहि. आपैं मिलैं. आपैं बिछुरैं. आपैं आप पुद्गल संबंधकरि बढै, आपैं आप पुद्गल घातक होइ करि घटि जाइ है। देखो, इन पुद्गल ही का भी अपनी पुद्गलकी जातिस्यौं तो संबन्ध है, परंतु इस जीवकों ए पुद्गल भी कबहू त्रिकालविषै भीटै नांही, आप आप ही पुद्गल खेलै है।

भो संत! जब यहु जीव अज्ञानादि विकार करि प्रवर्त्तै, तब इस पुद्गलकौं (पुद्गल के) हू खेलकौं देखि करि अवरु क्या, जीव परिणाम ही विषै आनैं (मानें)? ए सर्व काम मेरे कीये भए, ए ही चित्तविकारका माहात्म्य जानौं। (भो) संत! आपु तिसकौं कबही न भीटैं, अवरु यहु कबहूँ इसकौं नहीं भीटता; तिसकौं जानैं देखै मैं करौं हौं, इसस्यौं सुख पातु हौं, इसस्यौं मैं खेद पातु हौं, याहीतैं प्रतक्ष झूठ-भ्रम-जीवको भया तू जानौं।

अवरु भो भव्य! ज्ञानी ऐसैं जानैं है, देखै है, ऐसैं इह निश्चय करि है; सो क्या?

जावंत पौद्गलिक वर्ण रस गंधादिकनिका निपज्या यहू जावंत खेल-अखारा, तिसस्यौं तो कछू भी अपने लगाव होता देखता नांही। क्यौं (कि) यहू पुद्गलीक नाटक अवरु (अन्य) द्रव्यका भया देखिये है, अवरु यहू तो मूर्त्तीकका बन्या है नाटक, अवरु अचेतनका निपज्या नाटक, अवरु यहू तो अनेक द्रव्य मिलिकरि प्रवर्त्तै है नाटक, तातैं (इसलिये) इसस्यौं तो मेरा क्यौं ही करि (किसी भी प्रकारकर) संबंध नांही त्रिकालविषै देखियता।

क्यों (कि) मैं तो ज़ीवद्रव्य, मै तो अमूर्त्तीक, मैं तो चेतन वस्तु, मैं तो एक सत्व, मैं तो ऐसा, वह वैसा, मुझ (और) उस (में) भरे रीतेका-सा फेर, चांदने-अंधेरे का फेर, कहूं (कहीं भी) मुझ (में) उसकी सी भांतिका संबंध देखिएना नांही। तिसतैं तिसके नाटक कार्यका मैं न कर्ता, न मैं हर्ता, न मैं भोक्ता; किसी कालकै विषै न हुआ, होंगा, न अब हौं (हूं)।

तातपर्ज (तात्पर्य यही है), ज्ञानीनैं सर्वथा आप परद्रव्यविषै लगाव कछु देखता नांही। तिसतैं इस पुदूगलका नाटक ज्यों जान्यौं त्यौं करि नाचौं, आप आप ही उपज्यो, आप ही विनश्यो, आप ही आवै, आप ही जाइ, न मैं इसके नाटकौं (नाटक को) राखि सकौं, न छोड़ि सकौं। (साथ ही) इसके नाटका राखने-छोड़ने की चिंता भी कीजै, सो भी झूटी है, (क्योंकि) यह परवस्तु है। अपने गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, कर्ता, कर्म, क्रियादि सामग्रीस्यौं स्वाधीन है। ऐसैं ही जीव पुद्गल सर्वथा जुदे हैं, ऐसैं ही जुदे प्रवर्त्तै है। तैसैं ही ज्ञान भए स्यौं ज्ञानी जीव पर पुदूगल जुदा देखै है, जानैं है। अवरु ज्ञानी इस

जीवकौं ऐसैं देखै-जानैं है, जब लगु यह जीव विकारवंत प्रवर्त्तैं है तब लगु जु कछु जिस भांति-की विकारकी तरंग (लहर) प्रगटै है, तिन ही तरंगनिस्यौं व्याप्य-व्यापक है। तिनका कर्ता है, हर्ता है, भोक्ता है। सो विकार एक केवल चेतनाकी उपरावटी (ऊपरी) रीतका नाम हैं। भी (और भी) सो विकार अमूर्त्तीक है, एक जीवका ही भाव है, जीवस्यौं अभेद है। तातपर्ज (तात्पर्य यही है), सर्व सो विकार जीवभाव जन्य है अवरु संक्षेपस्यौं तो इस भावकौं "चित्‌विकार [चिद्विकार]" कहिये। अवरु इस चेतन विकारकी जु है तरंग, तिन तरंगहि का स्वांगहि का जैसैं २ नांव [नाम] उपजै है, विशेषकरि तैसैं कहिये हैः-

जे जे पुद्‌गलीक विषैं स्वांग होइ है मूर्तिक, तिस काल तिनही स्वांगहि की-सी नकलीद (मान्यता) करि जीवके विकारतरंग स्वांगधरि प्रवर्तैं है अमूर्त्तीक। इस विकार स्वांगका नाम परभाव कहिये। क्यौं (कि) इन स्वांगहि के भेद जीववस्तुत्व विषै तो थे नांही, तिसतैं स्व निजको कैसैं आवैं ? तिसतैं (क्योंकि) यह मूल जीव था दृष्टा ज्ञाता, तिसतैं जु इसके दर्शन, ज्ञान उपयोग

ही विषै मूर्तीक नाटक ज्ञेय स्वांग आनि (आकर) प्रतिभासै है । प्रति भासते ही तैसी जे तदाकार ज्ञेय प्रतिभासरूप भई ज्ञान दर्शनकी शक्ति तिस काल, तिसीकाल तिसी आकार विषै विश्राम लिया था तिस ज्ञेय प्रतिभासरूप उपयोग शक्तिनिका आचरण स्थिरता, आपुकौं तिस आकाररूप आत्मा यौंकरि भई-तब वै उपयोग जो हैं वै भी (होने पर भी) न जानैं न देखैं (है); आपकौं तो तिसी ज्ञेय आकाररूप करि आपको आचरै-तिसै (तथा) आपरूप स्थिर होइ रहै है, हम ऐसैं हैं ।

भो संत ! तू जानौं, ज्ञानदर्शनचारित्रहि करि परज्ञेय भास स्यौं (प्रतिभासित होनेसे) जीव यौंकरि स्वांगी होइ है, तिसतैं (क्योंकि) इस जीवके तो वस्तुविषै ऐसा स्वांग तो था ही नहीं, जिसतैं (अतः) इस भावको जीवका निजभाव कैसे कहिये ? तिसतैं (क्योंकि) अन [इस] जीव [ने] परज्ञेय भासका स्वांग आपकौं धरि लिया है, तात इस जीव विषै इस स्वांग भावको परभाव नाम कहिये । अब तिस स्वांग ही का नाम संज्ञा भेदकरि कहूं हूँ, ते तू सुनौः—

देखो, जो इस पुद्गलके अखाड़े विषै मूर्तीक

[भी] अचेतनका वन्या, भले वर्ण, रस, गंध, स्पर्शादिकके बने स्कंध सो पुण्य; बुरे वर्ण, रस, गंध, स्पर्शादिक करि बने स्कंध सो पाप; [यह] स्वांग कर्म वर्गणा आवनेंका मोहादि राह [द्वारा] बन्या, सो राह आश्रव स्वांग, जो चीकनी-रूखी शक्तिकरि परस्पर वर्गणा मिलि एक पिंड होइ बनैं सो बंध स्वांग; वर्गणा आवनेका राह रुक जाइ सो संवर स्वांग; जो थोरी-थोरी वर्गणा अपने स्कंधस्यौं खिर जाइ सो निर्जरा स्वांग; जो सर्व खिर जाइ सो मोक्ष स्वांग; जो एते एक क्षेत्राव-गाही पुद्गलके ज्ञय अखारै विषै बने स्वांग, सोई २ स्वांग इस विकारी जीवके ज्ञान दर्शन चारित्र करि निपजै-अमूर्त्तीक निपजै जे, ते कैसै ?

एक क्षेत्रावगाही पुद्गलीक पुण्य ज्ञेय,तिसको देखने-जानने रूप भई (हुए) जे उपयोग परनाम, भी (फिर) तिनही परनामही के आकार रूप करि कीया सुख सा विश्रामरूप वा सुख सा रंजना रूप भए चारित्र परिणाम, तव यौंकरि अमूर्त्तीक पुण्य स्वांग भेद जीवके निपज्या।

अवरु जिस काल एक क्षेत्रावगाही पाप ज्ञेय देखने-जानने रूप भए उपयोग परिणाम, भी

(फिर) तिन ही परिणाम ही के आकाररूप करि लीया संताप दुखरूप विश्रामरूप वा दुख रंजनारूप भए चारित्र परिणाम, तब यौंकरि अमूर्त्तीक चेतन पापस्वांग भेद जीवके निपज्या।

अवरु पुद्गलीक एक क्षेत्रावगाही मिथ्यात्व, अविरति, जोग, कषाय, आश्रव स्वांग बन्या, इस जीव के जु ज्ञेय-देखने-जानने रूप भए उपयोग परिणाम, भी (फिर) तिनही परिणाम ही के आकाररूप करि लीया विश्राम वा रंजनारूप भए चारित्र परिणाम, तब वे ही जू हैं रंजित परिणाम तेई परनमतैं, नवै (नूतन) २ सुख सा दुख संताप, दुख ही के रस स्वाद उपजने का वा तिन रस स्वाद हवनेका तिन रस स्वाद आवनेका कारण है वा राह है वा द्वार है वा आश्रव नाम कहो। उस भावका ऐसैं अमूर्त्तिक चेतन जीवके आश्रव स्वांग भेद यौं निपज्या।

अवरु पुद्गलीक मिथ्यात्व, अविरति, जोग, कषाय नवी २ वर्गणा आवने के राह, तिन राह मिटनैं तैं नवीन वर्गणा आवनें तैं रह जाइ है, तिसतैं तिस राह मिटने का नाम संवर पुद्गलीक स्वांग बन्या इस जीवके जु ज्ञेय देखने-जाननेरूप

भए उपयोग परिणाम, भी तिनही परिणाम ही के आकाररूप करि लीया विश्राम वा रंजनारूप भए चारित्र परिणाम, भी ते रंजित परिणाम भए नवै २ सुख सा दुख, दुख आवने का कारण, सो रंजना भाव जब मिटै तब तिस मिटनेका नाम अमूर्त्तीक चेतन सो संवर भेद जीवके निपज्या।

अवरु पुदूगलीक एक दो गुणे करि (गुणों से) अधिक चिकना २ रूखा २ चीकना-रूखा भावकरि आपसौं वीच परमाणु मिलै-संवंध को होइ, तातैं तिस चीकने-रूखैको पुद्गलीक (पौदूगलिक) वंध स्वांग वन्या कहिये, इस जीवके जु ज्ञेय देखने-जानने रूप भए उपयोग परिणाम, भीफिर तिनही परिणाम ही के आकार रूप करि लिया विश्राम वा रंजना रूप भए चारित्र परिणाम, तिव (तव) तिसैं रंजने स्यौं वै (वे) जु होइ है उपयोग ही के ज्ञेया-कार रूप परिणाम, तिस परिणाम ही के आकार ही से संवंध-मेलापक रंजन-राग होइ है, उस ज्ञेय आकारस्यौं संवंध-मेलापक रंजन-राग होय है, उस ज्ञेय आकारस्यौं रंजितपना-एकता लेय है, सोई अमूर्तिक चेतन जीवका वंध स्वांग भेद होइ है।

अवरु पुद्गलीक कर्मस्कंधसौं वगणा अंश २ जो खिर जांहि सो पुद्गलीक निर्जरा स्वांग कहिये। इस जीव के पर ज्ञेय देखने-जाननेरूप भए उपयोग परिणाम, भी तिन परिणाम ही के आकार-रूप करि लीया विश्राम वा रंजनारूप भए चारित्र परिणाम, यौं करि भए हैं पर ज्ञेय आकार भासस्यौं ज्ञान, दर्शन, चारित्र अशुद्ध परभाव रूपभी, जब जिस परभावरूप हवना ज्ञान दर्शन चारित्र ही का थोडा २ मिटता जाइ है सो अमूर्तीक चेतन जीवको संवरपूर्वक निर्जरा स्वांग भेद कहिये।

अवरु पुद्गलीक कर्म स्कंध सर्व खिर जाइ है-जीव प्रदेशनिस्यौं सर्वथा जुदी होइ है-सो पुद्गलीक मोक्षस्वांग कहिये। इस जीव के पर ज्ञेय देखने-जानने रूप भए उपयोग परिणाम, भी तिन परिणाम ही के आकार रूप करि लीया विश्राम वा रंजनारूप भए चारित्र परिणाम, यौंकरि भए है परज्ञेय आकार भाव सूं ज्ञान दर्शन चारित्र अशुद्ध वा परभावरूप भाव जब, तिस परभाव-रूप होना ज्ञान दर्शन चारित्रादि जीव द्रव्यका सर्व सर्वथा मिटि जाइ सोई अमूर्तीक चेतन जीवका मोक्ष स्वांग भेद कहिये।

यौंकरि चेतन, अमूर्तिक जीवके पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, बंध, निर्जरा, मोक्ष एक क्षेत्राव-गाह पुद्गल नाटकस्यौं इस नाटककौं जुदाही देखै है, पुद्गलसौं रंचमात्र भी लगाव देखता नांही। ज्यौंका त्यौं जीव नाटक जुदा देख्या होता, अवर भी आप जीवका नाटक जु देखै है, सो कौंन ?

यहू जू एक क्षेत्रावगाही पुद्गलीक वस्तु कर्म नाटक बन्यां, तैसा ही इस जीवका परभाव नाटक बन्या है। तकलीदी सो कैसे ? पुद्गलीक मूर्तिक अखाड़े विषै तो वर्गणा ज्ञानावरण दर्शना-वरण कर्म-संज्ञा स्वांगधरि नाचै है। तब तिसकी तकलीद मान्यता इस जीव के भी देखिये है। नाटक कैसे ?

ज्ञान दर्शन ही का परम निज जाति स्वभाव लोकालोक सर्व जुगपत् सर्व ज्ञेय ही कौं एक क्षणविषै जानना-देखना होइ है, यहू तो ज्ञान दर्शन का निज स्वभाव है। वा इसको कोई ज्ञान दर्शन इतना ही कहो। अवरु जब ऐसे लोकालोक का जानना-देखना न होइ, सोई सर्व न जानना न देखना भाव ज्ञानदर्शनगुण ही के होना अशुद्ध

भाव है। कोई परभाव कहो, या कोई स्वभाव का आवरण कहो। तिसतैं इस (इन) दोनौं भावहिको, व्याप्य-व्यापक करि, एक ज्ञान दर्शन गुण ही होइ है। निज भाव सुलटनि परभावउलटनि पर ज्ञानदर्शन वस्तु दोनों भाव ही विषै प्रत्यक्ष है।

तिसतैं देखो, (भो) मित्र! निज भावरूप भी परभावरूप भी एक ज्ञान दर्शन ही होइ है। तिसतैं जब लगु परभाव वा आवरण भाव रूप ज्ञान दर्शन व्यक्त प्रवर्त्तै है, तब लगु निजभाव वा वस्तुनामभाव रूप ज्ञानदर्शनगुण नांही प्रवर्तते (हैं)। तिसतैं तिस परभावके रूप व्यक्त प्रवर्तनेस्यौं निजभाव प्रवर्तते (प्रवर्तने) की व्यक्तता आच्छा दी गई है। तातैं परभावकी व्यक्तता ज्ञानदर्शनस्वभाव ही को आवरण काजं (कार्य) उपज्या।

तब देखो, या ज्ञान आपही जु बन्यां आवरणरूप, तिसतैं उसको ज्ञानावरण काजं (कार्य) अमूर्तिक चेतन स्वांगभेद भया है। अवरु या दर्शन आप ही जु बन्यां आवरणरूप, तिसतैं उसको दर्शनआवरण काजं (कार्य) अमूर्तिक चेतन स्वांगभेद भया है। अवरु पुद्‌गलीक कर्म अखारे विषै, कटुकस्वाद वर्गणा मिलि असाता (तथा) मिष्ट

स्वाद मिलि वर्गणा साता, ऐसे मूर्तिक अचेतन वेदनासंज्ञा स्वांग वन्या है। इस जीवके साता वा असाता ज्ञेय देखने-जानने रूप भए उपयोग परिणाम, भी तिन परिणाम ही के आकार लिया पर (में) विश्राम वा रंजना रूप भए चारित्र परिणाम, भी (और) तिन ही चारित्र परिणाम ही के भाव ही का तैसे करि भोगगुणके जु भए परिणाम भोगवने (भोगने) रूप वा ज्ञेयभास आस्वादरूप वा वेदनेरूप कहो, कोई भोग गुणका विपरीत भाव कहो, तो ऐसे जु भोग ज्ञेयभास-भोगनेरूप परिणाम विपरीत तिसको वेदना, कार्ज वन्या है ए (यह) भी यौं करि जीवके अमूर्तिक चेतन वेदना स्वांग वन्यां।

अवरु उस पुद्गलीक अखारैविषै तो मोह उन्मत्त-प्रमाद रूप वर्गणां स्वांग धरिकैं नाचै है। भी (और भी) तिस मोह विषै जाति भेद बहुत होइ है। सो ही तिस विषै एक मोह तो सम्यक्त्व मोह संज्ञा धरि उन्मत्त वर्गणा नाचै है, तब इस जीवके सम्यक्त्व गुणका निज स्वभाव है निज सत्व वस्तु की निज जाति रूप अपनी आस्तिक्य-ठीकता-याद रूप आचरण

सो भाव सम्यक्त्व का, भी सोई सम्यक्त्व, जु उपयोग ही करि ज्ञेय देखिए-जानिए है। तिस ज्ञेय वस्तुको अथवा एक प्रकारको स्ववस्तु करि सर्वथा करि आस्तिक्य आचरणरूप व्याप्य-व्यापक होइ है, सोई समकित आचरनगुणका उपरांवठा (ऊपरी) भाव विपरीत भाव सम्यक्त्वका परभाव कहिये, वा मिथ्या मोहभाव कहिये, वा मोहभाव कहिये ऐसैं इस मिथ्या भावस्यौं जु सम्यक्त्व आचरण गुण व्याप्य-व्यापक भया कार्य होइ है, सो यह सम्यक्त्व मोह कार्य अमूर्तिक चेतनरूप जीवके स्वांग भेद बन्या है।

अत्र सम्यक्त्व गुणस्य व्यवरणं (वर्णन) किंचित्

देखो, मित्र! जैसैं उपयोगके दोइ भेद भए हैं-सामान्यवस्तु अवलोकनिस्यौं दर्शनगुण है, विशेष अवलोकनिस्यौं ज्ञान गुण है, ऐसे करि उपयोगके दोय भेद भए सामान्यविशेषतैं। तैसे ही आचरणके दोइ भेद भए-सामान्यस्ववस्तु सत्ता पर मतिकी आस्तिक्यता-ठीक प्रतीति-यादरूप आचरण सो तो सम्यक्त्व आचरण गुण है अवरु जु विशेषकरि स्ववस्तु विषै थिरतारूप-वा विश्रामरूप आचरण सो चारित्राचरण गुण है। ऐसैं आचरणके दोइ भेद भये-सामान्य विशेषतैं। इति।

अवरु भी उस पुद्गल अखारै विषै तो चारित्र मोह संज्ञा स्वांगकरि उन्मत्त वर्गणा भई है सो भेद-भेदस्यौं कछु कहिये है–

पौद्गलिक कर्मवर्गणा अपने स्कंधकौं वा परके स्कंध ही को तप्तरूप, दुष्टरूप, उबलनेरूप वा खंडन, तोडन, क्षेदन मर्दन, संयमघातनादि रूप होइ परनमैं, सो पौद्गलिक क्रोध-चारित्र-मोह स्वांग बन्या। अवरु इस जीवके जु चारित्राचरण गुण तिसका निजभाव तो उपयोग चेतन वस्तुरूप विश्राम, थिर रहना है। अवरु जु उपयोग ही करि परज्ञेय देखिए-जानिये, तिस ज्ञेय विषै थिरता रंजना सो चारित्राचरण गुण का उपरांवठा (ऊपरी) भाव है, विपरीत भाव है, वा मोह विकल भाव है, ऐसा अमूर्तिक चेतन स्वांग बन्यां मोहरूप चारित्र-गुण, तिसका अब भेद २ कहिये है—

जु परज्ञेयको उपयोग ही के देखतैं-जानतैं (देखने जानने के कारण) अजुक्त (अयुक्त), तिस ज्ञेय प्रति द्वेषरूप, संताप-उद्वेगरूप, क्लेश तप्त क्षोभरूप, वा हतन हिंसन तोडन खण्डन छेदन भेदन मर्दनादिरूप करि रंजना होइ, सो अमूर्तिक चेतन क्रोध भेद चारित्रगुणके मोहभावका स्वांग बन्या।

अवरु उस पौद्गलिक चारित्रमोह कर्म-वर्गणा परनमनेके कारणस्यौं मन बचन काय स्कंध दुष्ट, क्रूर, स्तब्ध, उन्नत, अकड़ादिक रूप होइ सो पुद्गलीक मान मोहभेद निपजै है। तब इस जीवके जु है एक क्षेत्रावगाही पुद्गलीक मन वचन कायादि का शुभ प्रवृत्ति ज्ञेयको, अवरु समीपी माता, पिता, पुत्र, पुत्री, कलित्र (कलत्र-स्त्री), स्वजन, संबंधी, मित्रादि ज्ञेयको; अवरु उच्च-कुल, जाति, विद्या, कला, रूप, बल, परिग्रह, भीर, देशादि संयोग रीति ज्ञेय ही को, अवरु बहुत समीपी शुभ पुद्गलरीति ज्ञेयहि (ज्ञेयों) कौं उपयोगकरि देखि २ जानि २ अरु तिन ज्ञेय-निस्यौं आपकौं भला, आपकौं बड़ा, आपकौं पवित्र, अवरु लोकस्यौं (और लोगों से) आपकौं उच्च, आपकी स्तुति इत्यादि रूप होइ रंजै सोइ अमूर्तिक चेतन चारित्राचरण मोहका मानभेद प्रवर्त्तै है।

अवरु उस पुद्गलीक कर्म अखारै विषै पुद्ग-लीक वचन, काय, जोग (योग) वर्गणा शुभरूप खिरै है, पुद्गलीक मन वर्गणा दुष्टरूप होइ खिरै, अथवा पुद्गलीक मन वर्गणा शुभसौम्य-रूप खिरै, पुद्गलीक वचन, काय वर्गणा दुष्ट,

क्रूर, तप्तरूप खिरै सो यह भाव पुद्गलीक मोह-का माया ऐसा स्वांग उपजे है। तब जीवके जावंत (जितने) जीव-निजीव (चेतन-अचेतन) वंधादि (स्कंधादि) ज्ञेयनिकौं उपयोग ही करि देखता-जानता व भिन्न अस्पृष्ट करिएकैं (करके) तिस ज्ञेय खंध (स्कंध) प्रति केतीयेक प्रचुर (बहुत सी) शक्ति लोभ, रति आदि रागरूप रंजित, अवरु शक्ति केतीयेक थोरी-सी क्रोध, मान, अरति, भय, शोक आदि द्वेष तृष्णा रंजितरूप, अथवा प्रचुर द्वेष रंजितरूप, थोरी सी राग तृष्णा रंजित-रूप ऐसैं दुविधारूप तिस अस्पर्श ज्ञेय खंध (स्कंध) प्रति रंजना सो जीवका अमूर्तीक चेतन चारित्रमोहका माया-कपट (रूप) दुविधा स्वांग भेद बनैं है।

अवरु उस पुद्गलीक कर्म मन वचन काय वर्गणा स्कंध, अन्य स्कंधका कारण पाइ तिस स्कंधकौं आकर्षणरूप परनवैं, अथवा तिस स्कंध-सौं संबंध रूप परनवैं हैं सो पुद्गलीक मोहका लोभ स्वांग उपजै है, जथा (जैसे) अयचुंबक-न्यायेन (जैसे लोह और चुंबक का आकर्षण रूप न्याय)।

तब इस जीवके कुटुम्ब परिक ावंति (जितना) परिग्रह, जस (यश) कीर्त्यादि, जावंत

स्कंध ज्ञय, तिन ज्ञेयहि कौं उपयोगहि करि देखता-जानता अस्परस्यौं, तिन ज्ञेय खंध प्रति अत्यजन-रूप- न छोड़नेरूप-रागैं तृष्णा, वा तिस ज्ञेय प्रति तृष्णा-लालच-अभिलाष-व्यसन-चाह वा इक्षादि (इच्छादि) रूप रागरंजित भाव, सो अमूर्तीक चेतन चारित्रमोहका लोभ स्वांग भेद प्रवर्तै है।

अवरु पुद्गलीक मन बचन काया दि वर्गणाहि का जु (जो) विकस्वररूप-खिलन (खिलने) रूप जैसे प्रत्यक्ष आंख; होंठ, दांत आदि देय करि खिलनरूप-डहडहेरूप (ठट्ठा मारकर हंसना) होइ है सो पुद्गलीक जोगहि का खिलना सो मोहकर्म का हसना स्वांग उपजै है। अवरु इस जीवके बुरे रूप वा भले रूप पुद्गलीक स्कंध ज्ञय वा पुद्गलीक जोगहि का बुरी-भली चेष्टा-रूप ज्ञेय उपयोगकरि देखता-जानता आनंद प्रसाद-रूप-खुस्याल (प्रसन्न दशा) रूप, विकस्वररूप आदि रंजना सो चेतन अमूर्त्तीक चारित्रमोहका हंसना स्वांग (है)।

उस पुद्गलीक विषै तो पुद्गलीक मन बचन काया जोग वर्गणा स्कंध जिस अन्य स्कंधस्यौं संबंध करनैं कौं, शीघ्र संबंधकरिवे कौं

प्रवर्तै सो पुद्गलीक मोहका रति स्वांग उपजै। तब इस जीवके जिस ज्ञेय उपयोगकरि देखतैं-जानतैं, तिस स्परस (स्पर्श) करि ज्ञेय प्रति रुचिरूप-रागरूप, हेतरूप, स्नेहरूप आदि रंजना सो अमूर्तीक चेतन चारित्रमोहका रति स्वांग भेद जानना।

उस पुद्गलीक विषै जो पुद्गलीक जोग वर्गणा स्कंध-अवरु (अन्य) स्कंधस्यौं संबंधरूप न प्रवर्तै अथवा उलटे तिस स्कंध कारणस्यौं घाते छेदे (छेदे) जांहि सो पुद्गलीक मोहका अरति स्वांग उपजै। इस जीवके जिस जीव-निर्जीव स्कंध ज्ञेय उपयोगही करि देखतैं-जानतैं अरु तिस अस्परस (अस्पर्श) ज्ञेयस्यौं अरुचिरूप, अप्रतीत रूप, द्वेष रूप आदि रंजना सो अमूर्तीक चेतना चारित्रमोह का अरति स्वांग होइ है।

पुद्गलीक जोग वर्गणा अन्य खंध नाशस्यौं मुरझायेरूप-कुमलाये रूप-बिलखरूप अवरु कायका अश्रुआदि पातरूप, भ्रकुटि तिउडी (त्यौरी) आदि रूप सो पुद्गलीक मोहका शोक स्वांग उपजै है। इस जीवके जु जीव-निर्जीव खंध (चेतन-अचेतन स्कंध) तिसका नाशभाव, ज्ञेय उपयोगहि करि

देखतैं-जानतैं जिस अस्परस (अस्पर्श) खंध वियोग भाव ज्ञेयस्यौं (ज्ञेयों से) क्लेशरूप, द्वेषरूप, दुख-रूप, संकल्पविकल्परूप, संतापरूप आदि जु रंजना सो अमूर्त्तीक चेतन चारित्रमोह का शोक स्वांग होइ है।

अब उस पुद्गलीक अखारै विषै पुद्गलीक मन वचन काय वर्गणास्कंध अवरु जीव-निर्जीव स्कंधका संबंध कारण पाइ अरु संकोचनरूप होइ (होकर) वणकी फिरणीरूप वा कंपरूप होइ वा अवरु क्षेत्रविषैं चलि जांहि सो भाव पुद्गलीक मोहका भय कहिये। अवरु इस जीवके ज्ञेयकौं उपयोग ही करि देखतैं-जानतैं तिस अस्परस (अस्पर्श) ज्ञयतैं डररूप, संका (शंका) रूप, पुद्-गल अनिष्टरूप आदि रंजना सो जीवके अमूर्त्तीक चेतन चारित्रमोहका भय स्वांग उपजै है।

अवरु उस पुद्गलीक मन बचन काय वर्गणा स्कंध, अवरु (अन्य) स्कंध संबंधका निमत (निमित्त) पाइ अरु तिसस्यौं भिदै नांही, अवरु नासिका आदि संकोचरूप होइ सो पुद्गलीक मोहका दुर्गांक्षा (जुगुप्सा) स्वांग उपजै। इस जीवके जिस ज्ञेयको उपयोगहि करि देखतैं-

जानतैं गिलानिरूप, अनिष्टरूप, बुरेरूप आदिरंज-ना सो अमूर्तीक चेतन चारित्रमोहका दुर्गंछा (जुगुप्सा) स्वांग प्रवर्तै है।

अवरु उस पुद्गलीक मन वचन काय वर्गणास्कंध उग्र, उन्मत्त, अङ्गार होइ है, प्रमाद, तोड़न, मोड़न, लपटन, आलस्याकार होंहि, अवरु शुक्रादि धातु विकाररूप होइ, वा अवरु स्कंधस्यौं रमण भिदनरूप, सोइ पुद्गलीक मोहका पुरष (पुरुष) वेद स्वांग (है)। तब इस जीवके जिन पुद्गल स्कंध ज्ञेय उपयोगहि करि देखतैं-जानतैं (देखने-जाननेके कारण) उग्र उन्मादरूप, उच्चाट अरतिरूप, तापन, मोहन, वशीकरण, निर्लज्जरूप वा तिस अस्परस (अस्पर्श) ज्ञेय प्रति पुनः २ देखन, जानन, स्मरन, भोगवन, सेवनादि रमण तृष्णारूप रंजना, सोई अमूर्तीक चेतन चारित्र-मोह का पुंवेद स्वांग होइ है।

अरु उस पुद्गलीक विषै पुद्गलीक जोग वर्गणास्कंध मंदरूप उन्मादकार होइ (होकर) अंगतोड़न, मोड़न, लपटन आकार, प्रमाद, आलस, अंग आकार अवरु रजादि धातु विकार होंहि। पुनः अवरु स्कंधहिकौं रमावनेका कारण होइ,

सो पुद्गलीक स्त्रीवेद स्वांग (है)। इस जीवके जिन पुद्गलस्कंध, ज्ञेय उपयोगहि करि देखतैं-जानतैं मंद २ उन्मादरूप, उचाट (उच्चाटन), अरति, तापन, मोहन, वसिकरन (वशीकरण), लज्जा, मायारूप वा तिस अस्परस (अस्पर्श) ज्ञेय प्रति पुनः २ दिखावन, जनावन, सेवनादि रमावन तृष्णारूप रंजना सोई अमूर्त्तीक चेतन चारित्रमोहका स्त्रीवेद जानौं।

अवरु पुद्गलीक अखारै विषै जब पुद्गलीक पुरुष स्त्रीवेद मिश्रभावस्यौं खिरै पुद्गलीक जोग, सो पुद्गलीक मोहका नपुंसकवेद स्वांग (है)। तब इस जीव के जब अमूर्त्तीक चेतन पुरुष स्त्रीवेद मिश्रभावस्यौं चारित्र गुण रंजै सो अमूर्त्तीक चेतन चारित्र मोहका नपुंसकवेद स्वांग होइ है।

देखु (देखो) भव्य ! चेतन चारित्राचरण गुण परभावरूप मोहरूप वा कहौ (हुआ), ऐसे जु नटैं है, सो तिस पुद्गलीक मोहकर्म नाटकस्यौं जुदाई (जुदाही) है। सो तिस पुद्गलको त्रिकालविषै भी भीटता नांही, तिस स्यौं कछु लगाव नांही (यह) देखता (है) सम्यग्ज्ञानी।

अवरु तिस पुद्गल अखारै विषै आयु अैसेक (ऐसे एक) संज्ञा कर्म नाटक नचै है । सो कैसे करि है ? सो कहिये है—

जीवप्रदेशस्यौं अस्परस (अस्पर्श) शरीर पुद्गलीक आदि वर्गणा ही का एक संबंधकौं राखै थित (स्थिति) प्रमाण लगु राखै-जु पुद्गलीक खंध (पौद्गलिक स्कंध) सो पुद्गलीक आयु कर्म स्वांग निपज्या है। तब इस जीवके जु चरमदेहस्यौं किंचित् ऊन (कुछ कम) मूल अवगाहना गुण, सो गुण परभाव भया। तब अवर ही अवर परमानसौं व्याप्य-व्यापक होइ रह्या है मूल परनामस्यौं च्युत होइ रह्या है, सो यहू अमूर्तीक आयु स्वांग कहिये। यहू जीवका आयु भेद (है)।

अवरु उस पुद्गल अखारै विषै नामकर्म है, सो कैसे है ? तिस नामकी केतीयेक प्रकृति मिलिकरि तो शरीरका स्कंध परनाम मूर्ति रूपकौं होइ हैं। अवरु केतीयेक तिस नामकर्म की प्रकृतिनिकरि तिस शरीरस्कंध विषै रचना मंडनारूप होइ है, भी (तथा) अवरु केतीयेक प्रकृतिनि करि सोई शरीरस्कंध विषै शक्तिरूप होइ हैं, भी केतीयेक प्रकृति तिसकी तिस शरीरस्कंध छोटा बड़ा प्रमाणरूप होइ है, अवरु केतीयेक प्रकृतिकरि तिस शरीर

को सूक्ष्म, स्थूल, स्थावर, जंग (जंगम-त्रस) स्वासो-स्वाश शब्दादिरूप बनावै है, ऐसैं पुद्‌गलीक नामकर्म अखारा नाचै है। तब इस जीवके जु अमूर्तीक गुण करि हैं जीवके अमूर्तीक असंख्यात प्रदेश, तिन प्रदेशनिका निज स्वाभाविक नराकार परमिति (दायरा) चरमदेह परनामस्यौं किंचित् हीन, तिस परमितिकौं अवगाहना सूक्ष्म कहिये। अवरु जब अमूर्तीक प्रदेश विकाररूप प्रवर्तैं (है), तब जैसा पुद्‌गलीक देह आकार अरु देह परमित्त (परिमित) बनैं है, तैसैं तकलीद जीवके भी असंख्यात प्रदेश, तैसा ही आकार तैसा ही प्रमाणरूप होइ परनवैं है। ऐसा अमूर्तीक जू जीव प्रदेशहि का विकाररूप होना, इस रूप एक जीव के ही प्रदेश व्याप्य-व्यापक भए हैं, सो यहू इस जीव प्रदेश विकारको (से) जीवको नाम (कर्म) स्वांग निपजै है।

अवरु उस पुद्‌गल अखारै विषै पुद्‌गलीक देहस्कंधको उच्चकी पदवीकरि दिखावै[1] अथवा नीच की पदवीकरि दिखावै[2], सो पुद्‌गलीक भाव गोत्र-कर्म स्वांग कहिये। अब इस जीवके जु अगुरु-लघु गुण (है), अगुरुलघु क्या कहिये? जु द्रव्य-

---

१-२ जोधपुर वाली प्रति में 'दिपावइ' ऐसा पाठ है।

के अनंतगुण अपने २ स्वभावरूप परनवैं, अपने २ निज जातिरूप रहै निश्चल, तिस स्वभाव शक्तिको अगुरुलघुगुण कहिये । ऐसा जीवके अगुरुलघु गुणका निज स्वभाव (है) सो जु जीव-द्रव्य सर्वथा निजजाति स्वभावरूप कूटस्थ (निश्चल) प्रवर्त्तै सो अगुरुलघुगुण का निजजाति स्वभाव (है)। अवरु जब सोई अगुरुलघुगुण विपरीत रूप होइ है, सो विपरीतपना क्या?

द्रव्यके गुणप्रदेश जैसे के तैसे स्वभावरु (रूप) नांहि रहै, सर्वथा अवर से अवर होइ रहैं। पुनः सोई होना अगुरुलघुगुणको विपरीतपना-रूप प्रवर्त्तै है। तिस जीवके अगुरुलघुगुणके पर-भावकौं गोत्र स्वांग कहिये। अथवा यौंकरि जीव पापरूप परनवैं तो नीचरूप होइ भी (और) जीव पुण्यरूप परनवता उच्चरूप होइ है। इनस्यौं अतीत जीवका निज जातिरूप परनमन जैसे का तैसो नांही। ऐसैं जु अगुरुलघुकी विपरीतता भाव-स्यौं जीवका अमूर्तीक गोत्र स्वांग होइ है।

अवरु उस पुद्गल अखारै विषै जे पुद्गलीक मन वचन कायादि, तिनहू की खिरन-व्यापार-बल प्रवर्तना संपूर्ण न होइ, अधूराई खंडित होइ है, विघ्न होइ है तिस विघ्नभावकौं पुद्गलीक अंतराय कर्म

स्वांग है। तब इस जीवके जु जीव द्रव्यविषै गुणहि का निज जाति सकल स्वभाव शक्तिरूप अव्यक्त होइ रह्या है, पैं (परंतु) तिस गुण सकल स्वभाव कौं, जीवद्रव्य अपने परनामरूप व्यक्तता प्रवाहविषैं दैन को होइ सकैं नांही, अवरु यहू जीव द्रव्य जु षडगुनी हानिवृद्धिस्यौं समईक (समय एक भी) स्थायी शुद्धस्वरूप रूप पर्याय परनामहि करि, निज स्वभाव सुख भोगवनेंकौं होइ सकै नांही; अवरु यहू जीव द्रव्य निजजाति स्वभावका एक अद्वितीय स्वादकौं हरि हरि, बारंबार सर्व उत्पाद परनामहि परंपरा करि नांही उपभोग करि सकैं; अवरु यहू जीवद्रव्यके स्वादभाव भावशक्तिरूप अव्यक्त होइ रही है तिस स्वभावका लाभ-प्राप्ति जीवद्रव्यके परनाम (परिणाम) नहीं पाइ सकते; अवरु यहू जीवद्रव्यका सकल निज जातिरूप स्वभाव सर्वथाकरि फुरनें का-प्रगटने का-तिस भाव रहने का बल-वीर्य-गुण होइ नांही सकता; ऐसैं करि जीवका उद्यम बल वीर्य गुण निबल (होकर) विपरीत भावरूप परनम्यां है; तिसकौं अमूर्तीक चेतन अंतराय स्वांग निपजै है।

भो भव्य ! देखि तू, ज्ञानी ऐसैं करि आठ प्रकार अमूर्तीक चेतन नाटक होता जु देखै-जानै है, तिस पुद्गलीक नाटकस्यौं कछू भी लगाव नाहीं देखता । क्यों ? ज्यौं कछु लगाव होइ तो ज्ञानी देखै, जो होय नांही, तो ज्ञानी कैसैं देखै ? (अर्थात् नहीं देखैं) ।

अवरु वहु पुद्गलीक नाटक कर्म प्रकृतिके आवनें-जानें फेरकरि चौदह अखारै -स्थानक मुख्य बनैं है तब इस जीवके इस विपरीत पर अशुद्ध-भाव की जैसी २ घटन-वधन करि चौदह भेद मुख्य करि होइ हैं । तो ऐसे चौदह भेद ज्ञानी चेतन अमूर्तीक जीवके जुदे २ देखैं है, पुद्गलस्यौं कछू भी लगाव देखता नांही । ऐसे करि जीवका अशुद्ध परभाव नाटक होता जुदा ही देखै है । क्यों (कि) अशुद्धरूप प्रवर्त्या जीवद्रव्य तव तिस अशुद्ध भावस्यौं ही व्याप्य-व्यापक आपही होइ रह्या है ! त्रिकाल विषै अवरु द्रव्यकौं भीटता भी नांही, यहू द्रव्य ही की अनादि-अनंत मर्यादा बंधी है । वा (अथवा) द्रव्य शुद्धरूप परनउ (परिणमन करो) वा अशुद्धरूप परनउ, परंतु अवरु द्रव्यकौं न भीटै किसी प्रकार । तैसे ही ज्ञान होते ज्ञानी देखै-जानै है, यहू यौं ही है ।

भो मित्र ! तू भी ऐसी दृष्टि करि निहारवा करू (देखाकर) । अन्य लोक, स्वांग, स्कंध पर ज्ञेय द्रव्यको दोष न देखु-न जानौं, कि पर ज्ञेय (की) सन्निधि [निकटता] निमित्तमात्र देखि करि मेरा द्रव्य इन मैला कीया, ऐसै यहु जीव झूठैं आप भ्रम करैं है। पैं उन पर ज्ञेयनैं (से) तू कबही भीख्या भी नांही। अवरु तू उसका दोष देखैं-जानैं है सो यहु तेरा [यह] हरामजादगी है। योस्यौं एक तू ही झूठा है उसका कछु दोष नांही, वहु सच्चा है सदा।

तिसतैं, भो मित्र ! अमूर्तीक संसार नाटक-रूप तू ही नाचै है, सो ही तू देखु-जानु आपकौं। अवरु ऐसे अशुद्ध (अवस्था में) आपकौं देखते ही जानते ही तूझीकौं आपनी निज जातिकी वानगीका देखना, जानना, तिष्टना, आस्वादना तुझकौं होइगा। अवरु तब ही निन परनामहि स्यौं परिणामों से तेरे अशुद्ध परभावका हेय-नाश होइ है। सो स्वभाव वानगी वहु, जु यहुमय (इसमय) देखना ही जानना ही; इसी देखनेकरि जाननें करि आपा देखना-जानना देख्या-जान्यां। अरु तिन देखनें-जानने विषै विश्राम आराम होइ, स्वाद भोगवै सो जीवका।

निज स्वभावरूप, जिन केतेक जीव परनामहिकौं लखाव होइ है, सो ही जीव स्वरूप स्वभाव वानगी (है)।

(भो) मित्र ! सर्व इतना तातपर्ज (सब कहने का तात्पर्य यही है), जहां अपना अशुद्ध द्रव्य देख्या, भिन्न आपु, तहां निज स्वभावके स्वादका उद्योत है सही। ऐसैं होते (होने पर) तू ही जानैंगा, अवरु तू अशुद्धपनेंका नासकौं तू उद्यत होइगा, सो ऐसे तू निहारथा करू सदा।

इति अमूर्तीक चेतन भाव संसारस्थ व्याप्य-व्यापकैकजीव तदधिकारः।

संसारकर्तृत्व अधिकार वर्णन

कोई यौं प्रश्न करैं है-कि गुणस्थान, मार्गणा, कर्मजोग आदि संसार. सो संसार परिणाममय किसका है ? सो कहो, सोई कथन दिखाइये है—

देखो, एक चांद आकाशविषै है, एक तिसका निमित्त पाइ करि सुक्षता (स्वच्छता) पानी (का) विकाररूप चांद है। अवरु एक लालरंग है, अवरु एक तिसकै निमित्त पाइ फटककी (स्फटिक की) सुक्षता (स्वच्छता) लाली विकाररूप है। अवरु एक मोरखंध है, अवरु एक तिसका

निमित्त पाइ आरसी की सुक्षता, मोर विकाररूप है। तैसे ही एक गुणस्थान, मार्गणादि संसार पुद्गल खंध (स्कंध) है, अवरु एक तिसका निमित्त पाइ करि जीवकी सुक्षता, चेतना, संसार विकार-रूप है। तो इहां तुम्ह (तुम) न्याय करि विचारो तो चांद, लालरंग, मोर, संसार कवन (कौन) परनाममय वस्तुरूप निपज्या है? कवन परनाम ही विषै भावरूप निपजै है? देखु, जो वै चांदादि विकारी कहिये, तो तिनहू के अवर चांदादिकनिका निमित्त, सो देखियता नाही। अवरभी, जब वै चांदादि विकार भाव होंहि, तब तिनका सो विकारी सुक्ष (स्वच्छ) स्थान भी कोई देखियता नांही। अवरु भी, वै चांदादि विकार होंहि, तब अन्न-जलादि विकार चांदादि विकाररूप होना, मूलतैं नास्ति होइ सो तो इन जलादि विकार होतें प्रतक्ष देखिये हैं।

अवरु जो यौं कहिये, वैई चंद्रादि जलादि विषै प्रवेशकरि तिष्टि रहै है सो तो इन जलादि विषै परमाणुमात्र भी प्रवेश करि व्यापते देखि-यते नांही है (निश्चयसे)। अवरु जो यौं कहिये-जलादि चंद्रादि विकारकौं तिन चंद्रादि निमित्त विना ही

होइ हैं, सो तो इस चंद्रादि विकार की स्थिति, तिन चंद्रादि निमित्त स्थितिके आधीन केवल देखिये है। तिसतैं इहां यहू भी देखिये है-जो वै चन्द्रादि कबहूं नाशकौं होइ है, तव तिनके नास होते (यहां) भी कछु रहै नांही जाति (जाती) वस्तु देखियती, तिनका नाश, सु (सो) वस्तु ही का नाश है। तिसतैं तो इस निर्णयकरि तो यहू आया-वै चन्द्रादि वस्तु अंग परनाममय है, सु वस्तु ही है। अवरु जलादि विकाररूप चन्द्रादि नाश होते जलादि सुक्षता (स्वच्छता) परनाम रहि जाइ है प्रत्यक्ष, तिसतैं प्रतक्ष यहू है-जलादि सुछता वस्तु है। पैं उस चन्द्रादि रूपकी तकलीद करि जलादि सुक्षता परनामहूं आपकौं चन्द्रादि स्वांग वनाय लीया है, तिन सुक्षता परनामहू तिन चन्द्रादि वस्तुमय ही के रूप ही की कूट(अचल) करी है। पैं यहू कूट (अचल) की करन वाली सुक्षता वस्तु अंग परनाममय है। अरु तिस सुक्षता परनाम ही की करी चन्द्रादिरूप कूट, सो कूट भाव है-स्वांगभाव है. पैं कोई कूट परनाम नांही। कूट जू है सु (सो) परनाम ही का स्वांग है। इसतैं तो इस निर्णय करि तै यहू आया-जलादि सुक्षता परनामही विषै जु चन्द्रादि स्वरूप वन्या

सो रूप अवस्तु है, अपरिणाम[1] है। भी (और भी), भव्य निर्णय करि तैं ज्यौं की त्यौं बात आन ठहराई। सो तैं देखा। इहां तिसतैं अब निस्संदेह जानो—

गुणस्थान, मार्गणा, कर्म, जोग, बंध, कषाय, बन्ध, आश्रव, संजम, असंजम आदि जावंत जु संसार वस्तु अंग परिणाममय, सो सर्व पुद्गलीक केवल जानौं-द्रव्यमय[2] जानौं। अवरु भाव संसारकी ऐसी होनेकी विधि है, ते तू सुन—

इस जीवके ए जू है उपयोग रूपमय सुक्षता परनाम, तिन परनामहू विषै देखने-जानने के स्वभाव करि, सर्व पर ज्ञेय दृश्यके आकार होइ है। ऐसा वस्तु स्वभाव रीति उपयोग ही की है सदा, तातैं एक इस जीव विषै निश्चय करि पर भी है, स्व भी है, जु परदृश्य ज्ञेयरूप ज्ञान दर्शनके आकारते एक केवल आकार (सो) आकार तो पर है, अरु जु तहां देखना-जाननारूप, इतनां सौं स्व है।

देखु (देखो) स्वपर निश्चयकरि यौं जीव विषै है-प्रगट भी इस जीव विषै है टीकरूप-स्थिररूप

१, 'जोधपुर वाली' प्रति में "अपर नाम" पाठ है। २, देहली वाली प्रति में यह पाठ अधिक है।

आचरणगुण, सो आचरण गुण कीसी (किसी) ज्ञेय संसार पुद्गल खंघ (स्कंध) ही का निमित्त कालस्यौं तिन एक केवल आकार ही विषै प्रवर्तै है। अवरु कब ही केवल ज्ञान दर्शनरूप विषै प्रवर्तै है। अवरु एक है जब आचरण गुण तिन एक आकारविषै प्रवर्तै है। तिस काल तो जीवद्रव्य अज्ञान दुखादि अशुद्ध होइ है। भी (और) जब आकार ही कौं छोडि आचरण गुण एक केवल ज्ञान-दर्शनरूप प्रवर्तै है, तब केवल-ज्ञानादि सुख शुद्धताकरि जीव द्रव्य शुद्ध होइ है। यौं आचरण की रीति है।

तातैं, भो भव्य! तू देखु [तू] इहां, यहू आचरण गुण जब तिन एक आकार ही विषैं प्रवर्त्यां. सोई पर स्वांग रचना जीवकौं उपज्या-परविकार उपज्या। यौं करि जीव परनाम परका भाव स्वांग आपकौं बुनाय (बनाय) लेइ है। जु सर्व भावसंसार, सो भाव संसार जीवका केवल जानौं। अवरु परिणाम मय संसारस्यौं पुद्गल एक व्याप्य-व्यापक, अवरु भाव संसार-स्यौं एक जीव व्याप्य-व्यापक (होइ रहा है)।

अवरु एक बात जानौं--परनाममय रूप ही करि संसार का कर्त्तादि होइ है पुद्गल, अवरु

जीव परनामरूप ही करि संसारका कर्त्ता नांही होइ है। यहु जीव व्याप्य-व्यापनेस्यौं भाव संसार का कर्त्तादिकरि, कहिये है जीव व्याप्य-व्यापक अवरु एक है। इहां सो जानना पुद्गल द्रव्य अपने परनाम ही कौं संसारका कर्त्ता होइ है; परनाम पिंड करि संसारका कर्त्ता है। यहु जीव द्रव्य अपने परनाम ही के भावहि कौं संसारका कर्ता होइ है। अवरु जीव परनामहि के तरफस्यौं सदा शुद्ध, एक चेतनमय परिणाम उपज्यावनैंका कर्त्ता रहै है त्रिकाल। अवरु जे जीव द्रव्यके निपजाए है चेतन-मय एक परनाम, तिन परनामहु आपकौं संसार भाव-अशुद्ध भाव रच्या है तातैं जीवके परनाम संसारभाव-अशुद्ध भाव के कर्त्ता होइ है। पै (परंतु) जीवद्रव्य कब ही (कर्त्ता) न होइ, यहु निस्सन्देह है। परंतु एक है जीवके परनाम जु तिस संसार के कर्ता भए हैं वे परनाम इसी जीव द्रव्यके है, तातैं व्यवरा करि (व्यवहार नय से) जीव द्रव्यको भी कर्त्ता कहिए।

अवरु जीव परिणाम तिस अशुद्ध संसार-भावस्यौं जु व्याप्य-व्यापक भए हैं, तातैं तिन परनामहि कौं निश्चयकरि अशुद्धभावके कर्त्ता कहिये। अवरु जु शीघ्रतैं निश्चयकरि द्रव्यकौं

कर्त्ता कहै संसारका, तो भी कोई दूषण नहीं है। पै (परंतु) ज्ञानदृष्टि विषै जीवद्रव्यतैं (को) संसारका अकर्त्ता सदा लखियै है।

एक इहां दृष्टान्त जानना-जैसैं महावर जु है सो महावर आपु लाल परनाममय उपजी है। तातै सो महावर लाल परनाममय का कर्ता है। तथा पुद्गलद्रव्य परनाममय संसार का करता (कर्त्ता) है। अवरु तिस महावरका निमित्त पाइकरि फटिक (स्फटिक) शिला विषै भई विकार की लाली, तिस लाली भाव का कर्ता तिस शिलाविषै तिस शिलाका सुक्षत (स्वच्छ) परनाम है प्रतच्छ, वहु फटिक द्रव्य नहीं, लालीके परनाम करिवेकौं अकर्त्ता है। अवरु जो तिस लालीकौं परनामहि करि करै तो वहु लाली तिस फटिककै तिस सुच्छता (स्वच्छता) की ज्यौं होइ जाइ। तहां वहु लाली तिस फटिकका गुण होइ, जब गुण भया तब जाइ नहीं, तिसकौ विकाररूप न आवै, तब ऐसै अनर्थ उपजै। तातै यहु प्रतक्ष है-फटिक द्रव्य लालीका कर्त्ता नांही, तिसकै सुक्षत परनाम निश्चयकरि कर्त्ता है। परन्तु व्यवहारकरि फटिक लालीका कर्त्ता कहियै, क्यों (कि) वहु सुक्षता तिसकी है। ऐसे जीवकौं जानना।

फेर इतना (अन्तर यही है)-सुक्षता (स्वच्छता), परनामहि की ठौरु (स्थान) चेतन परिणाम (और) फटिक द्रव्यकी ठौर जीवद्रव्य लेना। ऐसै इस जीवकौं परनामहि करि संसारभावहि का कर्त्ता होइ है, तातैं इसकौं भाव संसार जानु।

मित्र ! अवरु एक इहां जानना-जीवकौं परनामहि की अवस्था जिस जिस काल जैसी २ होइ है सोई एक अवस्था जीवद्रव्यकौं होइ है। परनाम अवस्था बिना इस द्रव्यके अवस्था होनेका राह नांही। तातैं अवरु अवस्था, परनाम बिना क्यौं करि होइ ? वहिवी अंतर शुद्धाशुद्ध-मिश्र वा परनाम इन विचस्यौं (इनमें से) कोई जिस काल परनाम अवस्था धरै, तिस काल द्रव्य कौं ही एक दशा होइ है निस्संदेह। तिसकाल तिसी दशाका स्वाद है द्रव्यकौं।

इति संसार कर्त्तृत्वाधिकारः

अथ अनुभव विवरण

यहु पुद्गलीक कर्महि करि पांच इंद्री छठे मन रूप बन्या संज्ञी देह, तिस देहविषै तिस प्रमाण तिष्ठ्या जु है जीव द्रव्य, सो जीवद्रव्य भी इंद्री मनकी संज्ञा पावै। तिनका नाम भाव

इंद्री भावमन (है)। अवरु तहां छह प्रकार उपयोग परनाम भी भेद पड़्या है। सो एक उपजोग (उपयोग) परनाम भेद पुद्गलके स्पर्श गुणको देखै-जानैं, अवरु एक उपयोग परनाम भेद पुद्गलके रस गुणको देखै-जानै, अवरु एक उपयोग परनाम भेद पुद्गलके गंध गुणको देखै जानै, अवरु एक उपयोग परनामभेद पुद्गलके वर्ण गुणको देखै जानै, अवरु एक उपयोग परनाम भेद पुद्गलीक शब्द स्कंधको देखै जानै, अवरु एक उपयोग परनामभेद अतीत-अनागत-वर्त्तमान, मूर्त्तीक-अमूर्त्तीक की चिंता, विचार, स्मरणादि विकल्परूप देखै-जानै; ऐसे उपयोग परनाम भेद होइ रह्या है। अवरु उपयोग परनाम भेद जे पुद्गलके स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, ज्ञेय एकेक ऊपरि एकेक उपयोग परनामभेद देखने जाननेको राजा इंद्र उपयोग (के) भेद होइ रहै है। तातैं तिन उपयोग परनाम भेदहि को इस भावस्यौं इंद्री संज्ञा करि कहै। अवरु उपयोग परनाम विकल्प, विचार, चिंतारूप मनन होइ, तिस होनेस्यौं तिन उपयोग परनाम भेदको मन संज्ञाकरि कह्या। अवरु अब इन्हों को एक ज्ञानका नाम लेइ कथन करू हौं, तिस ज्ञान कहने करि दर्श-

नादि गुण सर्व आइ गए, तिसतैं ज्ञानका कथन करूं हूं—

देखु, संत! इन मन इंद्री भेदहि के ज्ञानकी पर्जाय (पर्याय) का नाम मति संज्ञा कहिये। अवरु भी, तिस मन भेद ज्ञानकरि अर्थस्यौं अर्थान्तर विशेष जाने, तिस इस जाननेको श्रुति संज्ञा कहिये। ऐसे जु ए मति श्रुति दोइ ज्ञानकी पर्जाय भी, ए दोनूं (दोनों) कुरूपता (विपरीत-रूप) अवरु सम्यगरूप होइ है तिसीका व्यवरन (विवरण) कहूं हौं—

इहां देखु, तू! यहु जीव जब लगु मिथ्याती होइ, तब लगु ए मति श्रुति कुरूप होइ है (अर्थात्) कुमति कुश्रुति (कहलाते हैं)। अवरु[1] जब यह जीव सम्यक्त्वी होइ है तहां ए मति श्रुति सम्यगमति, सम्यगश्रुतिरूप होइ है। सो कुरूपता क्या प्रवर्तै है? अवरु सम्यगरूपता क्या प्रवर्तै है? ते व्यवरा तू सुन—

(भो) संत! कुरूपता-बुरा, सम्यग्-भला (क्रमशः) मिथ्याती जीवके अरु सम्यक्त्वी जीवके (है)।

1, यह पंक्ति देहली वाली प्रति में अधिक है।

मति-श्रुति पर्जाय तो दोनुंके एकसी। यहु कुरूपता अरु वहु सम्यगरूपताका क्या भेद है? सो सुन—

(भो) संत! देखु तू, जु मिथ्यातीके मति श्रुति रूपकरि जु कछु जानना है, तिसको जानने विषै स्व पर व्यापक-अव्यापककी जातिका भेद नाही; तिस ज्ञेयको आपा लखै वा किछु लखताई नांही, यहु तिस मिथ्यातीके मति-श्रुतिरूप जानने विषै कुरूपता है। अवरु तिस सम्यग्दृष्टिके मति श्रुतरूपकरि जु कछु पर ज्ञेयको जानै है तिस जानतैं, परज्ञेयकौं परज्ञेयका ही भेद है अवरु जाननारूप स्वका ही भेद है। अवरु जो चारित्र तिस पर ज्ञेयको अवलंबै है अरु तिस पर ज्ञेयका स्वाद भी भोगवै है तो तिस चारित्र विकारको भी लखै है, यहु तिस सम्यग्दृष्टिके मतिश्रुति विषै सम्यग्रूप है।

अवरु यह सम्यक्ता सविकल्प निर्विकल्प रूपस्यौं दोइ प्रकार है--(१) जघन्य ज्ञानीके जब तिस पर ज्ञेयको अव्यापक पररूपत्व जानि आपको जाननरूप व्यापक जानै सो तो विकल्प सम्यक्ता (है)। (२) अवरु जु जाननरूप आपु

आपकौं ही व्याप्य-व्यापक जान्या करै, सो निर्विकल्प सम्यक्ता (है) । अवरु जुगपत् (एक साथ) एक बार एक ही समय विषैं स्व-स्वको सर्वस्व करि लखै सर्व, सर्वथा पर ज्ञेयहि को परिकरि लखै, तहां चारित्र परम शुद्धरूप है । तिस सम्यक्ता को परम-सर्वथा-सम्यक्ता कहिए, सो केवल दर्शन ज्ञान पर्यायविषै पाइयै । तौ यहु मति-श्रुति आदि ही की जाननदृष्टि जुगपत् क्यों नहीं, सो कारण क्या ? सो तू कारण सुन—

(भो) संत ! ए जु है मति श्रुति आदि ज्ञान प्रजुंजना (प्रयुंजना) रूप है। जींधे (जिधर)को जिस ज्ञेय प्रति प्रजुंजै (प्रयोग करे-उपयोग को लगावे) तब तिस काल स्वज्ञेय वा पर ज्ञेयको लखै काकगोलक न्याएन (न्याय से) वा जुगल नेत्रदृष्टि न्याएन । अवरु तिस विषै भी व्यवरा-स्वज्ञेयको अथवा पर ज्ञेयको प्रजुंजै हु ते एक अंगका भेद जानैं, भी तहांस्यौं छुटै अवरु (अन्य) ज्ञेय भाव प्रति प्रजुंजै तब तिसको जाने। तदुदाहरणानि—जो जीव द्रव्यत्व जाननेको प्रजुंजै, तब द्रव्यत्व सामान्य को ही जाने । अवरु जो उत्पाद व्यय ध्रौव्य भेदहि को जाननेको प्रजुंजै, तब तिन

भेदरूप ही को जाने है। अवरु तिस भेदहि विषै भी जब एक उत्पाद भावको जानै, तव व्यय-ध्रौव्यके भेद भावहिको न जानै! जब गुण रूपको जाने, तव द्रव्यरूप को न जाने। जब पर्याय रूप को जाने, तब गुणको न जाने। जब ज्ञान का रूप जाने तब चेतना वस्तुत्व न जाने। जब चेतन वस्तुत्व जाने तब ज्ञान गुणको न जाने। अवरु जब ज्ञान गुणकी मतिपर्याय रूपको जाने तब अवरु ज्ञानकी मन पर्यायहि को न जाने। जब स्व वस्तु को जाने। तब पर रूपको न जानै। अवरु यौं ही जो पुद्गल द्रव्यत्व को जाने तब पुद्गल गुणको न जानै। जो वर्ण गुणके रूपको जाने तब रसादि गुणके रूपहि को न जाने। जो रस गुणको जाने तब वर्णादि गुणको न जाने। अवरु जब मिष्ट रसको जाने तब अवर रसको न जाने। यौं करि सर्व तातपर्ज यहु (तात्पर्य यह है)--(कि) जघन्य ज्ञान जीघेंको जिस ज्ञेय भाव प्रति प्रजुंजै तिस काल तिसीको तावन्मात्र एक ज्ञेय भावको जानै। तिसकै दूसरे भाव प्रति जब प्रजुंजहि तब ही तो जानैं, तिस ज्ञेय प्रति प्रजुंजै बिना न जानैं।

१, २, यह दो दो पंक्ति देहलो वाली प्रति में नहीं हैं।

पै (परंतु) एक अवरु (और बात) है-मिथ्याती के भी यौं ही जघन्य ज्ञान ही का जानना है अवरु यौं ही जघन्य ज्ञान ही का जानना सम्यग्दृष्टिके होइ है। परंतु भेद इतना-जितना ही भाव जानै जब मिथ्यात्वी, तितनाई (उतना ही) अजथार्थ (मिथ्या) रूप अजातिभेद साधै; अवरु तिसी भावको सम्यग्दृष्टि जानै तितना ही यथार्थ रूप जातिभेद साधै। एताई (इतनाही) भेद, ऐसैं जघन्य ज्ञान प्रजुंजना रूप है। भी (फिर) अवरु कैसे है?

जघन्य ज्ञान जब जाननेको प्रयुंजै जिस ज्ञेय प्रति, तब तिसी ज्ञेयको क्रमकरि जाननरूप प्रवर्तै। तिसि ज्ञेयको पहिला थोरासा साधै, भी (फिर) तिसतई (उससे) कछु तिसको अधिक सा (साधै), भी तिसतै अधिक साधै; यौं करि तिस एक ज्ञेयको केतेक (कछु) काल विषै संपूर्ण साधै। ऐसे जघन्य ज्ञान क्रमवर्ती है। वा एक ज्ञेयको एक काल विषै जानै, भी दूसरे काल विषै दूसरे ज्ञेयको जाने, ऐसे क्रमवर्ती जानने। भी ए जघन्य ज्ञान कैसे है?

कतिपय है, सर्व ज्ञेयहि विषै केतेक ज्ञेयहिकौं जान सकै है अथवा केतीएक चेतन शक्तिनि करि

जान सकै है। अवरु एक द्रव्य विषै केतेक भावहि को जान सकै, सर्वथा सर्व जान न सकै, इसतैं कतिपय है। जघन्य ज्ञान भी कैसे है-जघन्य ज्ञान भी कैसे जघन्य ज्ञान है?

स्थूल काल लगु प्रवर्त्तै है साधने को ए जघन्य ज्ञान। जब किसी एक ज्ञेय जानने करि साधै तब जघन्य वा मध्यम वा उत्कृष्ट वा अंतर्मुहूर्त्त कालताई साधै है, ऐसैं ज्ञेय साधनेको स्थूल कालपर्याय है, भी ए जघन्य ज्ञान लघु काल स्थायी है। जु ज्ञेय भाव जानकर सिद्ध कीया भी, तिस ज्ञेय सिद्धकौं जो जान्या करे तो जघन्य वा मध्यम वा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त काल लगु जान्या करै है। भी तहांस्यौं छूट अवरु ज्ञेय भावको प्रवर्त्तै है, इस तै लघु काल स्थायी है जघन्य ज्ञान। अवरु ए जघन्य ज्ञान क्षयोपशम शक्ति है, ऐसे जघन्य ज्ञान ही विषै तो जानना होइ है।

इ (किन्तु) अप्रजुंज (अप्रयुक्त) जुगपत् सर्वथा सर्व एक समय अनंतकाल क्षायिकादिरूप केवल ज्ञान है। तिसतै इस केवल पर्जाय विषै परम सर्वथा सम्यगता होइ है। सो भो भव्य! ऐसे मति श्रुतादि ज्ञान पर्याय ही का स्वरूप कह्या

अवरु तिन ज्ञान विषै सम्यक्ता भी प्रवर्तती कही। सो सम्यक्ता दोइ प्रकार होइ है सो दिखावै है—

इस सम्यग्दृष्टिके जु इंद्री मन संज्ञा धारी उपयोग परनाम भावकी सम्यग्ता सो सविकल्प रूप है। अवर तिसकौं तू देखु-वर्ण रस गंध स्पर्श शब्द ज्ञेयहि कौं एक जानन-देखनरूप उपयोग जु परनाम परनमैं, तिस जानने-देखने को इंद्री संज्ञा एक धरी तिसको अब इंद्री २ नाम करि कहिये। सो इस सम्यग्दृष्टिके इंद्री नाम उपयोग परनाम, तिन परनामहि करि जब २ जु २ ज्ञेयहि को देखै-जानै, तब २ जथार्थ स्ववस्तु का लखाव लिए है वै उपयोग परनाम। अवरु चिंता, विचार, स्मरणरूप विषयभोग, संजोग-वियोग, स्नेह, सुख-दुःख, कषायादि अशुद्ध परिणति का द्रव्य-गुण-पर्याय स्वके परके भेद-अभेद आदिरूप जावंत शास्त्र, जावंत विकथा शास्त्र, जावंत स्व परकी अतीत अनागत वर्तमान अवस्थाहि की जु चिंता विचार स्मरण विकल्प कल्लोलरूप उपयोगहि के जानने-देखनेको जु परनाम

परनमै, तिन परनामही के देखने-जानने को मन संज्ञा धरि लई, तिसतैं अब इनही को मन नामकरि कहिए है। सोई इस सम्यग्दृष्टिके मन नाम उपयोग परनाम, तिन परनामहि करि जब जब जु जु चिंता विचार स्मरणरूप देखतैं-जानतैं तब तब जथार्थ स्ववस्तु काल लखाव लिए है वै उपयोग परिणाम। देखु, ऐसे इंद्री संज्ञा परिणामहि अरु मन संज्ञा परिणामहि विषै जु सम्यक्ता उपयोग ही की सो सविकल्परूप है। सो इस सम्यक्तास्यौं भी न बंध न आश्रव होइ। अवरु निर्विकल्प दशा कहूँ, सुन—

देखु, चारित्राचरण जु है तिस चारित्रके जे परनाम वर्णादिकनकौं आचरै-अवलंबै है तिन चारित्र परनामहिको भी इंद्री आचरण संज्ञा कहियै। अवरु तिस आचरणजन्य जु स्वाद तिस स्वादकौं भी इंद्री स्वाद संज्ञाकरि कहियै। अवरु जावंत सुभाव वस्तुस्यौं जु कछु अवरु सो सर्व विकल्प, तिन विकल्पहि को जे चारित्र पनाम आचरै-अवलंबै तिन परनाम ही को मनाचरण संज्ञा कहिए। तिस आचरणजन्य जु स्वाद तिस स्वादकौं भी मन संज्ञा कहिए। ऐसे जु मन इंद्री संज्ञा

धारी आचरण अरु स्वाद परिणाम तिस सम्यग्दृष्टिके तिन मन इन्द्री संज्ञाधारी सम्यग् उपयोग परनामही के साथ है। परंतु तिस सम्यग्दृष्टिके मन इन्द्री संज्ञा अशुद्ध चारित्र परनामहि स्यौं बंध आश्रव होता नाहीं। सो काहेका गुण है?

तिस सम्यग्दृष्टिके तिन मन इन्द्री संज्ञाधारी अशुद्ध चारित्र परनामनके साधिवे उपयोग ही के परनाम सम्यक् सविकल्प रूप ही है। तातैं तिन मन इन्द्री संज्ञाधारी चारित्र अशुद्ध परिणामों से बन्ध आश्रव होइ सकता नाही। तिन उपयोग सम्यक् परिणामों ने बन्ध आश्रव तिन अशुद्ध चारित्र परिणाम ही की बन्ध शक्ति कील राखी है। तातैं सम्यग्दृष्टि बुद्धिपूर्वक आचरण करि निरबन्ध निराश्रव हूवा है। ऐसैं सम्यग्दृष्टिके मन इन्द्री संज्ञाधारी सम्यग् उपयोग परिणाम अरु मन इन्द्री संज्ञाधारी अशुद्ध चारित्र परिणाम, ए जु है दोनूं परनामहि का प्रवाह चल्या जाइ है सम्यग्दृष्टिके। सो अब इनकी निर्विकल्प दशा होनी दिखाऊं हूं:-

जब तिस सम्यग्दृष्टिके वैई मन इन्द्री संज्ञाधारी उपयोग परिणाम, तिन परनामहि कौं एक बाह्य पर वर्णादि खंड-खंड देखने जाननेतैं इंद्री

संज्ञा धारी थी अरु ते उपयोग परनाम तिन वर्णादिकहिकौं जाननैतैं तो रहि गए, तब तिन परनामहि कौं तो इन्द्री संज्ञा न होइ-इंद्री संज्ञास्यौं अतीन भए। अरु जु जिन उपयोग परनामहि विकल्प देखनै-जाननैतै मन संज्ञाधारी थी, तब ही ते उपयोग परनाम भी तिन विकल्प देखनै-जाननैतैं रहि गए, तब तिन उपयोग परनामहि कौं मन-संज्ञा न होइ, ते परनाम तब मनसंज्ञा अतीत होइ हैं। यौं करि ए दो इं इंद्रियातीत (एवं) मनातीन उपयोग परनाम भए। अरु सर्व एक आप ही को आप चित् वस्तुरूप व्याप्य व्यापककरि प्रतक्ष आपही देखन लगै-जानन लगै वेई उपयोग परनाम प्रतक्ष अवरु उस मन इंद्री भावस्यौं शून्य हो गए। अवरु तब ही वै जु थे मन इन्द्री संज्ञाधारी उपयोगदशा की वरके (बलसे) साधी मन इन्द्री संज्ञा धारी अशुद्ध चारित्र चपल परनाम, तेई चारित्रके परनाम तिसी काल परावलंब अरु चपलतास्यौं रहि गए। तब तिन चारित्र परनाम ही को मन इन्द्री संज्ञा न होइ, मन इद्री संज्ञा अतीत चारित्र परिणाम कहिये। अवरु ते चारित्र परिनाम निज उपयोगमय चित् वस्तु विषै दीखै स्थिरीभूत शुद्ध वीतरागमग्नरूप प्रवर्तै

(है); अवरु तिन ही चारित्र परनामजन्य निज स्वाद होइ है ।

यौंकरि जब सम्यग्दृष्टिके ज्ञान दर्शन चारित्र सहित परिणाम निज चित् वस्तु ही को व्याप्य-व्यापकरूप देखैं-जानैं तिष्टै, निज व्याप्य-व्यापक स्वाद लेहि, तिस स्वस्वाद दशाका नाम स्वानुभव कहिए। तो ऐसे स्व-अनुभव होते तब छदमस्ती (छद्मस्थ) जीवके दर्शन ज्ञानादि परनामहि को निर्विकल्प सम्यक्ता उपजै है। सो जघन्य ज्ञानी सम्यक्दृष्टिके निर्विकल्प उपयोग सम्यक्ता जाननी। तिस कालं यहां स्वसंवेदनका यहु अर्थ जानना-स्व कहिए मैं-आपु ज्ञान, सं कहिए साक्षात् प्रत्यक्ष करि, वेदन कहिए इस वस्तुस्यौं व्याप्य-व्यापकरूप जाननां।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि होते (ही) तिस जीवद्रव्य विषै जु ज्ञान गुणकी शक्ति साक्षात् प्रतक्ष होइ ऐसी प्रवर्तो कि-इस स्थानक विषै यहु मैं ज्ञान, इस आत्मवस्तु परवान (प्रमाण)तादात्म्य व्याप्य-व्यापकरूप है (हूं)। इस ज्ञान शक्ति जानने का नाम स्वसंवेदन कहिए। सो यहु शक्ति स्वसंवेदन इतना, ज्ञानकी छदमस्तीके साक्षात् प्रतक्षरूप होइ प्रवर्तै है। इस ज्ञान शक्ति (की) प्रतक्षतास्यौं

केवली श्रुतकेवली बराबर है, यहु भेद नीकै जानना।

ऐसे करि जघन्य सम्यग्दृष्टिके सम्यक्ता-स विकल्प निर्विकल्प करि दोइ प्रकार होइ है। तिसतैं जघन्य सम्यग्दृष्टि इनहूं, दोनूं सम्यक्ता-स्यौं निरबंध निराश्रव होइ है। अवरु जब वेई ज्ञान दर्शन चारित्र परिनामहि करि स्व स्वादरूप स्व अनुभव होइ तब तिन परनामहि कौं एते नाम-संज्ञा भावहि करे नाम कहौ. कोई निर्विकल्पदशा कहो, वा आत्म सन्मुख उपयोग कहो. वा भावमति भावश्रुति वा स्वसंवेदन भाव वा स्ववस्तु मग्न वा स्वाचरण वा स्वस्थिरता वा स्वविश्राम वा स्वसुख, इन्द्री मन संज्ञातीत भाव, शुद्धोपयोग वा सर्व संज्ञा भाव, उपचारतैं इंद्री मन स्वरूपविषै मग्न वा यौंकरि एक ही संज्ञा कहिये। स्व अनुभव इत्यादि संज्ञाकरि बहुत प्रकार है, पै (परंतु) एक स्वस्वादरूप अनुभवदशा मुख्य नाम जानना अथवा निर्विकल्पदशा। अवरु इस निर्विकल्पदशा रहनेका काल तू सुन—

जघन्य वा मध्यम वा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त लगु वै परिणाम वहै रहे है स्व अनुभवरूप। अंतर्मुहूर्त पीछे भी परिणाम मन इन्द्री संज्ञाधारी होइ विक-

री होंहि (होकर) चारित्र परावलंबी होइ है, तहां पर स्वाद आवै है। ऐसे ही वे सविकल्परूप भी होइ जाइ है। अवरु भी केतेक काल पीछै यहु सविकल्प भावस्यौं रहित होइ करि भी परिणाम अनुभवरूप होइ जाइ है। अन्तर्मुहूर्त्त पीछै भी परिणाम सविकल्प रूप धरै भी केतेक काल पीछै परिणाम सविकल्परूप छोड़ि अनुभव रूपको होइ है। जघन्य ज्ञानीके सम्यक्त्वाचरण धाराप्रवाही परनाम वर्ग है, चारित्राचरण अनुभव धारा प्रवाही नांही। जघन्य ज्ञानीके अनुभव कदाचित् कहै (कहा जाता है) तहां एक यहु व्यवरा है—

जु सम्यग्दृष्टि चौथे (गुणस्थान) का है तिसके तो स्व अनुभवका काल लघु अंतमुहूर्तताई रहै है, अवरु बहुत काल पीछे होइ है। अवरु तिसतैं देशव्रतीका अनुभव रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त बड़ा है अवरु थोरेई काल पीछे २ होइ है। अवरु सर्वविरतीके स्व अनुभव दीर्घ अन्तर्मुहूर्तताई रहै है वा ध्यानस्यौं भी होइ है अवरु बहुत थोरे थोरे काल पीछे २ स्व अनुभवदशा हुवाई (हुआ-ही) करे बारंबार। अवरु सातमैं (गुणस्थान) तै ए परिणाम, जे पूर्व स्व अनुभवरूपको होइ थे ते

तौ अनुभवरूप तिष्टै, पै तहां मुख्यसौं कर्म-धारास्यौं निकसि २ करि स्व रसस्वाद अनुभव-रूप होने चले। ज्यौं २ आगु का काल आवै है त्यौं २ अवरु २ परिणाम स्वादरस अनुभव रूपकरि चढ़ते चलै है। यौंकरि तहांस्यौं अनुभव दशाकी परिणाम बढ़नि करि पलटनि होइ है, क्षीणमोह अंत लगु जाननी। भो सविकल्पके आचरण वाले! तू एक वात सुन—

देखो तू, जु यह परिणति व्यवरन करि (वर्णन करके) परिणामों का सविकल्प-निर्विकल्प, स्व अनुभव होना दिखाया, सो तू भी अपनी परिणति इस कथन माफिक है कै नाही? (तुलना करके देख) अरु तू सम्यग्दृष्टि तैं (तेनैं) इस माफिक होती देखी, तो हम एक अवरु कहै है-सो क्या?

तू देख, यह स्व अनुभव दशा स्वसमयरूप स्वसुख है, शांत विश्राम है, स्थिर रूप है, कोई कल्याण है, चैन है, तृप्तिरूप है, सम भाव है अरु सुख्य मोक्ष राह है, ऐसा है। अवरु यहु सम्यग् सविकल्प दशा (में) जद्यपि उपयोग निर्मल रहै है, हा! तथापि चारित्र परिणाम परा-वलंब अशुद्ध चंचलरूप होते संते, तिसतैं सवि-

कल्प दशा दुग्व है, तृष्णा तमकरि चंचल है, पुण्य-पापरूप कलाप है, उद्वेग गा है. असंतोषरूप है. ऐसे २ विलापरूप है चारित्र परिणाम। सो ए दोनुं तैं (तूने) अवस्था आपु विषै देखी है। तिसतैं भला यहु है-जु तूं स्व अनुभवरूप रहनेका उद्यम राख्या करु, यहू हमारा बचन व्यवरण (व्यवहार) करि उपदेश कथन है। इति अनुभवाधिकारः।

अथ अन्यत् किंचित् कथ्यते।

तावत् दृष्टांत (दिखलाते हैं)

कोई देश, तिस देशविषै एक नर, सो नर छत्तीस पवनकी सेवा करै। तहां भी तिन पौनकौं (पवन को) भी राजा करि जानै देखै सेवै अरु यादि राखे। यौं ही करते २ तिस नरकी अवस्था बहुत काल लगु वीती। एक दिन तिसी (नर) के विचार आया। किसी ज्ञाता पुरुषके कहनेस्यौं उपजी। तहां तिन ज्ञाता पुरुषने यहु कह्या-कि एक (ये) छत्तीस पवन राजा नांही। अवरु ए राजाके नगर नांही। तू इनकौं राजाकी झूठी प्रतीत करि सेवा करै है। झूठे ही इनकौं तू राजा देखै जानै है, पै (परंतु) ए राजा नांहीं, ए तौ नीच

जाति हैं। अवरु इनको राजा मानि तू बहुत नीच भया है। अवरु इनकी सेवास्यौं तू सदा दरिद्री, दुःखी, भिखारी रहैगा, अवरु अनादिस्यौं रहि आया है, सो तू आप को देख अवरु उस राजाकी सेवातै राजाई (राजा ही) होइयै है। धनी, अजाची, सुखी, निडर, उच्चशोभा आदि वहुत प्रभुता नरकी होइ है। इन (पवन) कौं तू राजा माने सो तू अज्ञानतैं भरम रह्या है। हम भी तेरी ज्यौं, यौं ही भरम विषै पड़ि गए थे। किसी काल (हमने) भी जब राजा देख्या प्रतक्ष (रूप में) तब यहु भरम हमारा मिटि गया। ऐसी प्रभु होनेकी बात सुनतैं भी तिस पुरुषकौं राजा देखने-जानने-सेवनेकी रुचि भई। तहां तिन नर (ने) तिस ज्ञात नरको पूछा—

भो ज्ञान नर! सो राजा कहां है? अरु क्यौं करि पिछानियै? अरु क्यौंकरि तिसकी सेवा कीजै? अरु क्यौंकरि मेरै ताई भी (मुझे भी) प्रभु करैगा वहु? यहु मुझको बात बताओ। क्यों (कि) तुझ विषै यह हवाल (हाल) वित्या है, तातैं तू बतावो मूल यहु। तब सो ज्ञान नर बोल्या-मैं तो यहु बातकी बात कहूंगा-पै (परंतु) तू यौं ही करि उद्यमरूप होइयै। पर तू होइगा, क्यों (कि) तेरी तीव्र रुचि देखियै है। सो तू इलाज सुन-

मित्र ! अथ पहिलै तू इहांस्यौं उद्यमवंत होहु, धीरजवंत होहु, पीछू यहु एतेक मान इस देशको तू जानि। पीछू इस देशविषै पांच नगर है-धर्म, अधर्म, काल पुद्गल, जीव-ए नाम है पांच-निके। तहां तू तिन चारि नगर ही का, तिन नगर के लोगाचार ही का तमाशा भलै देखियै, तिनकी रीति याद राखियै, पै (परंतु) वहां बैठि न रहियै। क्यौं (कि) तुझको राजा पै जाने का काम है, इनताईं कछु काम नांही। ए नगर तुझको प्रभु न कर सकेंगे। भी तहांस्यौं आगू तू तिस जीव नगरको जाइये। जब वहु नगर तेरी दृष्टि विषै आवै, तहां पहिले कोट आवैगा ईंट माटी पत्थर चूनै का बन्या। तिसको तू देखिकरि भलीभांति करि भी तूं वहु छोड़ि आगै जाइयै। तहां आगे आवेगा आठ सात आदि अन्य लोक जातहि (वहां उस) की इक ठांहरी (इकट्ठी) बसती आवेगी, तिस वसतीको नीकै देखिये। भी तिन जाति ही की भिन्न २ रीतिका तमाशा देखिये। भी तिसकौं छोड़ि करि आगे चलिए, तहां आगे जैसी आठ सात आदि नाम अन्य जाति ही की बसती छोड़ि आया था, तैसी जाति, कुल, नाम रीति धारी लोग-हि की इकठाहरी (एक जगह) बड़ी बहुत सभा

आवैगी, तहां वहुत तिन लोग ही की भीर (भीड़) है। अवरु तेई (उसी) सभाके लोग सर्व राजाकाई परिवार है। तिसतै वै भी सभाके लोग राजाकरि राजाई (रैयत) कहावै है सर्व। अवरु राजा की सी दीप्ति लियैं है सब तहां। तू खबरदार रहिए-होशियार रहिए तहां तिन जातिको भले करि पिछानि राखियै, तिनके धक्के सहियै, तिनकी दीप्ति क्रूर देख डरै मति (मत), तिनस्यौं निःशंक रहियै अवरु मनकी रुचि राजा देखनेकी राखियै। पै तिनकौं राजा २ कहनेतैं तू इनकों राजा करि न भरम जाइये, राजा करि इनकी सेवा को न लगु जाइयै, परंतु इनकौं भले पहिचान देखि राखियै। तू भी अवरु इनकौं देखता अरु छोड़ता-देखता छोड़ता आगेकौं चल्या जाइयै। जहां भी ए सभा (के) लोग पूरे भए ए सब पीछेकौं तू छोड़ि गया, तब इनका तो भय मिट्या। (आगे) जिहां सिंहासन, छत्र, चामर, मुकुट लक्षण आवहिंगे, तिन लक्षणहि कौं तू भले देखियै-जानियै अरु याद राखियै तू। यौं इनकौं तू जानकरि अरु भी तिन मुकुटादि लक्षणहि कौं लिए संयुक्त, परम दीप्ति सुन्दर सौम्यादि मूरति जु नर तिष्ठ्या है सोई राजा तू देखियै-जानियै। भी तब ही तिसी

राजाके लक्षण, सूरत, मूरति यादि रूप हीए (हृदय) बीचिकरि रखि लीजै। क्यौं (कि) तिस यादि-गिरीस्यौं अवरु नरकौं भी देख राजाकी शंका तिस प्रति कब ही न उपजैगी। तौकौं (तू) ऐसैं जब राजा नरकौं देखैगा, तब तू देखतैं भी तोकौं अपूर्व परमानन्द आवैगा, अरु कोई अपूर्व नरकौं तू देखहिगा। अरु तिस राजा नरके देखतैंई तेरे मनकौं कोई उमंग उठैगी अवरु तू देखतैं भी (ही) तिस विषै मग्न होइ जाइगा।

तू ही उहां (वहां) की रीति देखेगा, मेरी कहने की क्या है? अवरु तिस राजाकी सेवा इतनी ही, जु तिसके सन्मुख मग्न रहना, इंघे उंघे न होना (अर्थात् उपयोग को जरा भी चंचल न होने देना) भी उहांस्यौं छुटि जांहिगा तू केतेक काल पीछू, तब भी फिरि उन (वैसा ही) होना। भी उहास्यौं छुटि जाहिगा तू केतेक काल पीछू, तब भी फिरि उनही कदीमी लोगनि विषै आवैगा। तहां फिर सेवा तू उन ही लोगहि की सेवा करैगा, तिसी सेवास्यौं सुखी दुःखी भी होइगा। परंतु तहां तिन लोगहि की सेवा तू करैगा; पैं तिन लोगहिकौं राजा अव न देखेगा न जानेगा। अब तिनको तिस राजा की रइयत (प्रजा)

ही जानैगा अरु देखैगा। क्यौं (कि) जद्यपि तिस काल प्रतक्ष राजाकौं देखता जानता नांही, पैं जु तैं राजा (के) लक्षणहु करि सूरति याद ठीक करि लई है, राजाकी सूरत याद जु रहै है; तातैं अब तिन लोगहि कौं राजा नांही देखता, लोगहि को लोग ही करि देखै है, राजाका भ्रम उपजता नाही।

अवरु राजाकी सेवा सुखका जु सुख लिया, सो सुख इन लोगहिकी सेवा का सुख नांही देखता अब। अवरु तिनकी सेवा करनी बुरी बहुत लगै (सो) बुरी देख्या जान्यां करेगा। मनमांहि चिंतवैगा--कि यहु सेवा--संबंध इनस्यौं कब न आपदा रही मेरै ? अवरु तहांस्यौं तो तू तिन लोगहि को राजा संबंधकरि देखने--जाननेस्यौं रहा (रुकगया)। पै कोई सेवा करनी तिनकी रह गई है, ऐसैं करि तू तिन लोगहि विषै विचारता, पै लेकिन रुचि मनविषै राजा ही की सेवाकी रहेगी। अवरु भी तिनकी सेवा छोड़िकरि अब शीघ्रस्यौं तिसी राजाकी सेवा करने लग जांहिगा, अवरु भी राजाकी सेवा छूट जाइगी, भी इन लोगहि की सेवा करने लग जायेगा। अवरु भी यहु सेवा छोड़ैगा, राजाकी सेवा करेगा, यौं ही हौंतै २

केतेक काल पीछे तिसी राजाकी सेवा बीच रहि जाइगा। सर्व तातपर्ज यहु (है) तब तूं ही राजा होइ रहेगा। केते कालविषै ऐसे राजाकी तेरे प्रभुता होइगी। तिस राजाकी सेवास्यौं तब वह नर, यह कथा सुनि अरु त्यौं ही रीत करी अरु त्यौं ही राजा भी उपज्या। इति दृष्टान्तः। अथ दार्ष्टान्त एवम्—

इस जीवके परिणाम, सो परिणाम अन्य परभावहि कौं अवलंबन शेवा करै है। तहां तिन परभावकौं सेवतैं तिन परभावहि कौं परिणाम निज स्वभावकरि देखै (है), जानै है, सेवै है। अरु तिन परकौं निज स्वकरि ठीक राखै है। यौंही २ अनादिस्यौं करतैं इस जीवके परिणाम ही की अवस्था बहुत काल लगु बीती। भी काल पाइ भव्यता परिपाक भई, तब आप ही अथवा अन्य ज्ञात गुरुके उपदेश (का) कारण पाइ, तिन गुरुने उपदेश्या—

भो भव्य ! परनामहु हीन पर की तुम सेवा करो हो अवरु ए परनाम परकी सेवा करते, इन ही नीच परकौं तुम उच्च स्वकरि (अपना मान-कर) देखो हो, जानो हो, भी स्वकर याद टीककौं राखो हो; सो भो भव्य ! परनामहु यहु परनीच

है, स्व उच्चत्व नांही। अवरु यहु तुम्हारा वस्तु आधार नांही। अवरु इन नीचके सेवतैं तुम भी पर नीच ही से होइ रहै हो। अवरु इन पर (एवं) नीच की सेवा करतै दुःख, उपाधि, दलिद्र (दारिद्र्य) लेय रहौं हौं सदा। ए तुमको रंचमात्र भी कछु देय सकते नांही। अवरु तुम झूठे भी (ही), 'एंई (ये ही) हमको देइ है' ऐसे मान रहे हो। तिसतै ए तो पर (और) नीच है परंतु तुम इनकौं स्व उच्चत्व मानि बहुत नीच भए हो।

भो भव्य, परनाम हु जो कोई स्व उच्चत्व है तिसको तुम्हहु (तुमने) न कबहू देख्या है, न जान्या भी है, न सेया है। तातैं तिसको याद तुम कहांस्यौं राखो ?

अवरु जो अब तिस स्वभावको देखो जानहु अरु सेवा करहु। तब आप ही तुमको याद भी रहैगा सोई, तो तुम सुखी होहिगे, अजाची (बिना मांगे) लक्षपती होहुगै अरु तुम प्रभु होहुगै अपनी लक्ष्मीस्यौं। ऐसे तिन भव्य. परिनामहु (कौ) सुनि अरु तिस निज स्वभाव (को) देखने जानने सेवनेकी अपूर्व महारुचि उपजी। अवरु तब ही तिन परनामहु तिसको पूछ्या-तिस निज स्वभावताईं (स्वभावको) क्योंकरि

किन (भांति) राखौं, किस स्थान है ? सो सब रीति कहो। तब तिन ज्ञान गुरु (ने) जथार्थ ज्यौं की त्यौं राह स्थानादि पिछाननेकी रीति कही। तब तिन वह रीति याद राखि अवरु अब वै ज्यौं परनाम उद्यमकरि चलै है स्वभाव देखने, जानने सेवनेको ? सो कहिए हैं—

पहिले तो इन परनामहु छह द्रव्यहि की संख्या देखी। तिस पीछे एक आकाशद्रव्य अवगाह कारण गुणादि पर्याय लक्षणहि करि जुदा देख्या, पैं तिस विषै स्वभाव राजा का लक्षण कोई न देख्या। तातैं तिस आकाश द्रव्यको छाड़ि आगु धर्म द्रव्य गति कारण गुण पर्यायादि लत्तनहि करि जुदो देख्या। पैं तिस विषै भी स्वभाव राजाका लक्षण कोई न देख्या। तातैं तिस धर्म द्रव्य को भी छाड़ि. आगू अधर्म द्रव्य स्थिति कारण गुणपर्यायादि लत्तनहि करि जुदो देख्या। पैं तिस विषै भी स्वभाव राजाका लक्षण कोई देख्या नांही। तातैं तिस अधर्म नगर को भी छाड़ि अवर आगे काल द्रव्य वर्त्तना कारण गुण पर्यायादि लक्षणहि करि जुदो देख्या। पैं तिस विषै भी स्वभाव राजाका कोई लक्षण देख्या नाही। तातैं तिस काल द्रव्यको भी छाड़ि, आगे

पुद्गल द्रव्य वर्णादि गुण-पर्याय लक्षनहि करि जुदो देख्या। पैं तिस विषै भी स्वभाव (राजा) का लक्षण कोई न देख्या। तातैं तिस पुद्गल द्रव्य को भी छाड़ि दिया।

ऐसे तिन परनामहु ए पांच द्रव्य तो देखै, पैं स्वभाव राजाका नाम मात्र भी नाही देख्या, तातैं इनको छाड़ि दिया। आगूं इन जीवसंज्ञा द्रव्य नगरके ताईं आन पहुंचे। तहां इन परनामहु: यही नोकर्म खंध (स्कन्ध) कौड (कोट) रूप देख्या। जु देखै, तो सर्व पुद्गल द्रव्यका बना है निस्सन्देह। तिस विषै तो स्वभावका कोई लक्षण भी नांही, तातैं इस नोकर्मको छाड़ि अवरु तिस भीतर परनाम आए। तहां जु देखै-आठ-कर्म, नव तत्त्व, कार्मन (कार्माण) मंडली खंधकी (स्कंधकी) बसती बसै है। जो तिस बसतीको देखै तो सर्व पुद्गल द्रव्यकी जाति केवल बसै है अवरु तिनही की आपस विषै लेवा देई, संबंध सगाई, लड़ाई प्रीति क्रिया करै है। ऐसे तिस बसतीके विषै भी स्वभावका कोई अंग न देख्या, निस्संदेह। तातैं तिस कर्मादि पुद्गल जाति बसतीको छांड़ि ए परनाम आगूकौं गए। तहां जु देखै-जैसी पीछे कर्मादि पुद्गल जाति ही की संज्ञा थी, तिनही २ जातिकी संज्ञा धरै चेतन परनाम

भावकी वसती है। पै तेई भाव जाति सर्व चेतन परनाम ही की हैं, तातैं वे सर्व चेतनही २ नामधारी होइ रहै है, तिस चेतनकी सी भाषाको सर्व लिए हैं, ऐसी जीव परनाम भावहिं की जाति देखि, जो संभालिकैं देखै तो इस भावहि विषै [तो] स्वभाव नाही, सो तो परकी तकलीद भाव देख्या। तातैं इन परनामहु, परभावहि को भी अपनी शक्ति करि जुदे किये। तिनकों जुदे करते ही अरु ज्ञाता द्रष्टादि लक्षणमय चेतन स्वभाव (को) तिन परनामहु देख्या जान्या प्रतक्ष-साक्षात्। तिस स्वभाव सन्मुख स्थिरीभूत भए, तहां विश्राम लिया, तिस विश्रामके लेते अपूर्व सुख उपज्या तिन परनामहु को। आकुलतास्यौं शांत होइ गए, चयनरूप भए, बहुत अपूर्व शोभावंत भए अवरु प्रभुता रूपको उद्यत भए, तिस स्वभावको प्राप्त भए, जे (वे) परनाम।

सर्व तातपर्ज यहु-तिन परनाम्हहि की कथा वचन करि कहां लगु कहिए? यौं करि ए परनाम स्वभावको प्राप्त भए केतेक काल रहै। भी तिस स्वभाव विश्राम सेवास्यौं परनाम छूटै, भी (फिर) तिन ही पर द्रव्य लोक ही विषै आए, तिनविषै भी आए परनाम तिन पर द्रव्य लोक ही

की अवलंबन सेवा तो करै, भी तिसी सेवास्यों सुखी दुखी भी होइ है; परंतु वे परिणाम यों जानै देखै-कि यहु हम अवलंबन पर द्रव्य ज्ञेय नीचैहु को अवलंबै हैं, हम सेवा करनकौं इन लायक नांही, हमको तिस एक चेतन भावकी सेवा शोभै है। ये पर द्रव्य सर्व, तिस एक चेतन स्वभाव राजा की ज्ञेय दृश्य रइयत है। तिसतैं ये परिणाम, अब इन पर द्रव्य-ज्ञेय रइयतहि-को, ज्ञाता दृष्टा लक्षणमय चेतन स्वभाव राजा, तिस राजा रूपकरि न देखै न जानै। एक केवल इन पर द्रव्यहि को अब तिस चेतन राजाकी ज्ञेय रइयतरूप जानै है, निस्सन्देह।

अवरु अब ये परिणाम इस परद्रव्य ही को अवलंबै है परंतु तिस चेतन स्वभावकी ज्ञाता दृष्टा लक्षणमय मूर्ति, आस्तिक्य प्रत्यक्ष शक्तिकरि, ठीकता प्रत्यक्ष शक्तिकरि वा याद शक्तिकरि राखी है इन परनामहु, जद्यपि इस वर्तमान काल अनु-भवरूप प्रत्यक्ष चेतन स्वभावको देखते, जानते, सेवते नांही। ये परिणाम इस काल विषै तिन परद्रव्य ज्ञेय रइयत ही को देखै जाने है सेवै है परंतु अन (अन्य) परनामहि को, तिस चेतन स्वभाव ज्ञाता-दृष्टामयमूर्ति साक्षात् तद्रूप याद शक्ति-करि रहै है सदा।

जैसे कोई पुरुषने कोई एक ग्रन्थ अनाइ (यादकर) राख्या है अवरु अव वर्तमान काल (में) तिस ग्रन्थ पाठको देखता जानता चोखता पढ़ता नांही। कै सोवै है, वा खेलै है, वा प्रमादी भया है, वा अवरु ग्रन्थ घोखे पढ़ै है, वा खान पान गमन हसन स्नान दान आदि क्रिया करै है तो कोई जानेगा इस पुरुषके इस काल, बहुत ग्रंथनि यादि किया है वह ग्रंथ इस काल विषै इस पुरुष के ज्ञान में नांही, सर्वथा नास्ति होइ गया है इस पुरुषस्यौं। सो यौं तो नहीं भइया, यहु पुरुष अवरु अवरु दान २ क्रियाको कर्त्ता, प्रवर्त्तता, अभ्यासता (है), परंतु सोई ग्रंथ यादि शक्तिकरि, ठीक शक्तिकरि विद्यमान है अरु तिसके जानन विषै है, सो ग्रंथ तिस पुरुषस्यौं कबहूं जाता नाही। अवरु तिस ग्रंथकी यादि शक्तिस्यौं भी जब तिस ग्रंथको पढ़ै है, तब भले पढ़ै है। तिस पढ़ने का सुख लेई है। अवरु भी तिस ग्रंथ यादि शक्ति-स्यौं यहु है अवरु ग्रंथ, पाठ पढ़ने विषै मिलाइ देइ नांही। सो यहु तिस ग्रंथ यादि शक्तिको गुण है।

ऐसे जो इन परनामहु विषै चेतन स्वभाव राजाकी ज्ञाता दृष्टादि लक्षणमय मूर्ति ठीक याद-रूप परनाम प्रवर्त्तै है तातैं तिन परनामहु विषै चेतन स्वभाव याद है। अवरु ये परिणाम, तिन

पर द्रव्य ज्ञेयोंको देखते जानते (भी,) तिस चेतन स्वभाव ज्ञाता दृष्टामय सूरतको मिलाइ नहीं देहि, स्वभावको जुदा राखै है। यह तिस स्वभाव (की) ठीक यादि परनाम प्रवर्त्तनेका गुण है। ऐसे अव ये परिणाम अन (अन्य) पर द्रव्य भावहिका अवलंबन सेवा करनी छाड़ि भी केतेक काल पीछे तिस चेतन स्वभावकी स्थिरता विश्राम सेवारूप सन्मुख होइ है। तिस सेवास्यौं वही सुख-शांति अनाकुलतादि रीति होइ है। भी केतेक काल पीछे तिस चेतन स्वभावकी सेवा छूट जाइ है, तब भी (फिर) तिन ज्ञेयकी सेवा करै है वेही परिणाम, यौंही २ कबहूं स्वभावकी सेवा करते, कबहूं परभावोंकी सेवा करते बहुत काल बीत्या।

तब काल केतेक पीछे ये परिणाम, जो तिस चेतन स्वभावका विश्राम सेवाविषै लगे थे सो तो लगे, पैं अवरु जो अशुद्ध कर्मरूप भावस्यौं परिणाम थे ते परिणाम भी आगत समय २ विषै अशुद्ध रूपस्यौं दूर होइ २ तिस स्वभावरूप विषै विश्राम सेवाको लगते चले। यौंही होते २ जब इस जीव द्रव्यके सब परिणाम स्वभावरूप विश्राम स्थिरताको चारित्र परिणाम भए, एक केवल निज स्वरूप को ज्ञान दर्शनादि सर्व परिणाम भए, तब

इहां तात्पर्य यह है कि—सर्व ये परिणाम सर्वथा स्वभावरूपक कूटस्थ सिद्ध होइ निवरे, तब इस स्वभाव राजाकी प्रत्यक्ष जानने देखनेकी दो हीं (शक्ति) सर्व ज्ञेय-लोकालोक रइयत ऊपर प्रवर्त्त गई। अनंत बल वीर्य, अनंत परमसुख समूहवंत भए, परम प्रभु उपजै, तिसकी अवस्था कथनातीत है। तातैं इतना जानना कि ये परिणाम तब परिणाम स्वरूपऋद्धि, प्रभु, नित्यपद को प्राप्त भए।

भो संत! इस कथन विषै एक तो बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा इन परनामहिकी अवस्था जाननी। अवरु एक अंतरात्मा की अवस्था विषै ज्ञान दर्शन सम्यक्त्वाचरण, चारित्राचरण की रीति कही है, अपने परिणामों से लगाय (तुलना-करके) देखनी, यहु उपदेश दिया है। इति दृष्टांत पूर्वक स्वरूप व्याख्यान।

अथ छद्मस्थनां परमात्मप्राप्त (परमात्मप्राप्तेः) सकला रीतिः एतावत् एकांतेन अस्ति ।

(दान का लक्षण)

जीवद्रव्य निजस्वभावभावशक्तिरूपं, अव्यक्तत्वत् निजस्वभावभावव्यक्तत्वेन यदा[१] [२]स्वपरना-[३]मेभ्यः (स्वपरिणामेभ्यः) [४]ददाति तद्दानम् ॥ १ ॥

अर्थ—निजस्वभाव भावशक्ति रूप ही जीव द्रव्य है। अव्यक्त जो निजस्वभाव भाव उसके अभिव्यक्त हो जाने पर जिस समय अपने रूप परिणामन करता है वही दान है ।

(शील का लक्षण)

शीलो निजचेतनस्वभावः तस्य निजस्वभावस्य, अन्य-परभावशीलनारीभ्यः यत् [५]विरतिः, अतिष्ठनं, पालनं तदेव शीलपालनं ॥ २ ॥

अर्थ—अपने चेतनस्वभाव को शील कहते हैं । उस अपने स्वभावकी अन्य परभावरूप नारी से विरक्तता (त्याग) और अपने स्वभाव में स्थिर रहना ही शीलपालन कहलाता है ।

---

१ सोनगढ़ वाली प्रति में 'निजस्वभाव व्यक्तत्व न' ऐसा पाठ है ।

२ देहली वाली प्रति में 'जुदा' पाठ है ।

३ सोनगढ़ वाली प्रति में 'स्वपरनामस्यः' ऐसा पाठ है ।

४ देहली वाली प्रति में 'दद्याति तदानं' ऐसा पाठ है ।

५ 'विरत्य तिष्ठनं' ऐसा पाठ सोनगढ़ वाली प्रति में है ।

(तप का लक्षण)

यत् देह परिग्रह भोग परिवार इष्ट मित्र शत्रु परज्ञेयस्य [1]त्यजनं–ममतारूपरहितत्वं, वा तृष्णा तस्याः तृष्णाया रहितं भावशोभनं तपनं तदेव तपः ॥ ३ ॥

अर्थ—शरीर, परिग्रह, भोग, कुटुम्ब, इष्टमित्र, शत्रुरूप परज्ञेयों को छोड़ना यानी उनमें ममता रहित परिणति होना तथा उनमें तृष्णा रहित होना और अपने स्वभाव में स्थिरता होना ऐसी तपस्या ही तप कहलाती है।

(भावना का लक्षण)

यत् निजस्वभावस्य अनुभावनं तदेव (सर्व) भावना ॥ ४ ॥

अर्थ—अपने स्वभाव की वार वार भावना (चिन्तवन) करना ही भावना कहलाती है।

(व्रत का लक्षण)

यत् इंद्रियमनभोगादिभ्यः संवरणं परिणामानां तत् व्रतम् ॥ ५ ॥

अर्थ—इंद्रिय, मन और भोगादिकोंकी ओर जाने से अपने परिणामों का रुकना व्रत कहलाता है।

---

१ 'त्यजन पुन ममतारूपा वा तृणुगा तस्याः तृणुगाया' ऐसा पाठ सोनगढ़ वाली प्रति में है।

(दया का लक्षण)

यत् निजस्वस्वभावं विकारभावेन न घातयति न हिनस्ति, निजस्वभावं पालयति तदेव (सैव) दया ॥ ६ ॥

अर्थ—विकारमय परिणामों द्वारा अपने निजस्वभाव का घात नहीं करना तथा अपने स्वभाव का पालन करना ही दया है।

(यति और श्रावक का लक्षण)

सर्वं इंद्रियभोगेभ्यः देहादिपरिग्रह ममत्वत्यजनं तत् (स) यतिः। किंचित् त्यजनं श्रावकः ॥ ७ ॥

अर्थ—समस्त इंद्रियों के भोगों से और शरीरादि परिग्रह से सर्वथा ममता रहित होना यति का लक्षण है। इनमें एकदेश ममत्व का त्याग होना श्रावक का लक्षण है।

(वैराग्य का लक्षण)

रागद्वेषखेदरहितं उदासीनभावज्ञानसहितं तत् वैराग्यम् ॥ ८ ॥

अर्थ—राग, द्वेष, खेद रहित उदासीन भाव ज्ञान सहित होना वैराग्य कहलाता है।

---

१ 'भावे न घातयति' ऐसा पाठ सोनगढ़ वाली प्रति में है।

२ 'तजति' ऐसा पाठ सोनगढ़ वाली प्रति में है।

(धर्म का लक्षण)

निजवस्तुस्वभावो धर्मः तदेव (स एव) धर्म्मः ॥ ९ ॥

अर्थ—वस्तुका निजस्वभाव ही धर्म है अतः उसही को धर्म कहते हैं।

(शुद्ध का लक्षण)

रागादिविकाररहितो[1] शुद्धः ॥ १० ॥ इत्यादि निश्चयाः चेतनजा ॥

अर्थ—रागादि विकार रहित ही शुद्धका लक्षण है।

(इति छद्मस्थी की परमात्मलाभ की सकल रीति इतनीं)

(अथ [illegible] कथनिका)

क्षयोपशम, पांच इंद्रिय पुद्गलके जो बने आकार, तिन आकार स्थानहु विषे तिष्टे प्रवर्तै है [अरु] जे जे क्षयोपशम जीवके चेतन परिणाम, प्रवर्तै, जैसी २ पुद्गलकी इंद्री, नाम धरै है तैसे ही; इंद्रीय आश्रय करि उद्यत होइ जे प्रवर्तै तिन तिन चेतन परनामहु, तैसे तैसे पुद्गल एकेक गुणस्कंधहि कौं देखै-जानै, भी तिन राहों (मार्गों) करि

---

१ 'रहित तो, ऐसा पाठ सोनगढ़ वाली प्रति में है।

तैसा ही सुख दुःखको वेदै हैं तातैं तिन चेतन परनामहिकौं इंद्री संज्ञा धरी।

सर्व तातपर्ज-पुद्गल इंद्रिय राहौं आश्रय जे प्रवर्त्तते परनाम, तव इंद्री संज्ञा पावै। अवरु ऐसे ही परनामिहि को मन संज्ञा भई जान लेनी। ऐसे करि तो इन परनाम भावहि को इंद्री संज्ञा। अव अतीन्द्रिय संज्ञा कौन २ को है? सो कहिए है।

जे जीवके परनाम, क्षयोपशमादि विना एक सावरणादि भाव करि प्रवर्तै है तिन परनामहु को अवुद्ध संज्ञा है तिन अवुद्ध संज्ञा परनामहि को है। अतींद्रिय संज्ञा भी कहिये अवरु जव जिस काल सम्यक्दृष्टिके सम्यग्-मति श्रुति परनाम, इंद्री-मन भावस्यौं रहित;होइ स्वरूप अनुभव रूप होइ है तव लगु वै परनाम भी अनुभव, अतींद्रिय संज्ञा पावै है। अवरु जव केवलज्ञान दर्शनादि-रूप जीव होइ है तहां तै जीवके केवलरूप परनाम भी अतींद्रिय कहियै है। ऐसे ही अतींद्रिय संज्ञा परनामहि को जथा ठिकाने (यथास्थान) जान लेने।

अवरुजु किंचित् २ वस्तुहुके लक्षण साधै सो ज्ञान दर्शन भाव परोक्ष कहिये।

अवरु प्रत्यक्ष के चार भेद-जव यहु संसारी जीव सुख दुःख वुद्धिपूर्वक भोगवै है तव वुद्धि-

पूर्वक उपयोग तिस भोग को प्रगट जानै देखै है तिसको सुखदुख वेदन कहिए अवरु जब मति श्रुति स्वरूप अनुभवरूप होइ है तब तिस समय यहु हम चेतन व्याप्य-व्यापक वस्तु ऐसे प्रत्यक्ष प्रगट-जानने देखनेरूप मति श्रुति उपयोग भाव है, निस्सन्देह सो अनुभव प्रत्यक्ष कहिए, स्वसंवेदन प्रत्यक्ष कहिये। केवलज्ञान केवल दर्शनादि होते तब तिस केवलको सकल प्रत्यक्ष नाम कहिए। अवरु अवधि मनःपर्यय ज्ञान किंचित् २ ज्ञेयहि को प्रगट जाने देखे है सो देश प्रत्यक्ष कहिए। चारित्र प्रत्यक्ष यथा स्थान जानने।

[अथ छद्मस्थिनां परमात्मप्राप्तेः सफला रीतिः एतावत् एकांतेन अस्ति]

इहां एक तात्पर्य की बात सुनि लेई-भो छद्मस्थी, तिस बातके किए बहुत नफा अपने आप सिद्ध होइ है, तेरे ताईं कार्जकारी बात इतनी (ही) है। तेरे कार्जकों संवारने वाली इतनी यै है, अब सो क्या?

प्रथम दृष्टान्त—जैसे सीसा आरसीका एक तादात्म्य व्याप्य-व्यापक है-एक व्याप्य-व्यापक ही

---

१ यह भूल से दोबारा लिखने में आई मालूम होती है।

है। जु वह सीसा सुक्षताई (स्वच्छता) का निखा-लस केवल एक पिंड बंध्या है। तिस पिंड बधने विषै अवरु किछु भी नांही मिल्या है, एक केवल सुक्षताका सीसा पिंडबध्या है। सो तो तादात्म्य व्याप्य-व्यापक अङ्ग है। अवरु जु वह तिसकी एक सुक्षता पैनी उजली प्रतिविंबाकाररूप होइ है सो व्याप्य-व्यापक अङ्ग जानना। तातैं सीसेका तादा-त्म्य व्याप्य-व्यापक अङ्ग करि देखिये तो एक सुक्षता का ही पिंड है, तिस विषै अवरु किछु नांही तिसकी अपेक्षासे, अवरु तिस सुक्षता का भाव ज्यौं है त्यौं होइ है। इति।

तैसे देखो चेतन परनामहु तुम, तादात्म्य व्याप्य-व्यापक रूपकरि तो एक निखालस केवल चेतना वस्तु का ही पिंड बंध्यो है; तिस पिंड बंधने विषै तो, [अवरु] शुद्ध-अशुद्ध, संसार-मुक्ति, भेद-अभेद, निश्चय-व्यवहार नय-निक्षेपादि ज्ञेयाकार प्रतिभासादि जावंत भावहि का किछु रंचमात्र भी भाव मिल्या नांही, अनादितैं निखा-लस चेतनवस्तु पिंड बंध्यो है अवरु तिस चेतन परनाम रूप ही विषै शुद्ध-अशुद्ध, संसार-मुक्ति, भेद-अभेद, निश्चय-व्यवहारादि ज्ञेयाकार प्रतिभासादि भाव सब ही रूप तुम्हहोइ है सो

व्याप्य-व्यापक का रूप भए हो। यौंकरि तुम तादात्म्य व्याप्य-व्यापक रूप होता तो—

भो छद्मस्थ परनामहु, ज्यौं परनाम व्याप्य-व्यापक भाव विषै अभ्यासरूप प्रवर्तोगे, तो इह तो एक तुम वस्तु, वस्तुका रूप (हो), परंतु छद्मस्थ परनामहु, तुम विकलपजाल विषै पडि जाहुगे, तहां तब क्लेश पाहुगे। तुम्हारी शक्ति इतनी तो है नांही, जु संपूर्ण प्रत्यक्ष तिस विकलपजाल को साध सको; तातैं इसस्यौं परमात्म लाभ (का) काज सधना नांही तुम्हारा। अवरु तुमको अपना परमात्म काज साध्या (साध लेनेकी) चाहि है, तातैं तुम इतना ही यहु प्रवर्त्तना अनुभवौ साधौ·इस अपने तादात्म्यरूपको प्रत्यक्ष देखो, जानो हु (और) स्थिर रहो। इतनी ही रीति तुम्हकौं परमात्मरूप होने को कार्यकारी है। अवरु विकलपजाल काजकारी कोई नांही, यहु निर्भयकरि जानो छद्मस्थ परनामहु, तातैं तुमको इस रीति विषैं उद्यमवंत रहना, परमात्मलाभ (की) सफल रीति यही है; तुम निस्संदेह जानहु।

[इति छद्मस्थी की परमात्मलाभ (की) सकल रीति इतनी।]

इति जीव भाव वचनिका संपूर्णम्।

॥ अथ आत्मावलोकन स्तोत्र ॥

गुणगुणकी सुभाव विभावता,
लखियो दृष्टि निहार।
पै आन आनमै न मेलियौं,
होसी ज्ञान विथार ॥ १ ॥
सब रहस्य या ग्रंथ को,
निरखो चित्त दय मित्र।
चरनस्यौंजिय मय लौहधई,
चरनस्यौंई पवित्त ॥ २ ॥
चरनउलटैं भ्रम समल,
सुलटै चरन सब निर्मल होति।
उलट चरन संसार है,
सुलट परम की ज्योति ॥ ३ ॥
वस्तु सिद्ध ज्यौं चरन सिद्ध है,
चरन सिद्ध सो वस्तुकी सिद्ध।
समल चरण तव रंक सो,
चरन शुद्ध अनंती ऋद्धि ॥ ४ ॥
इन चरन परके वसि कियौ,
जियको संसार।
भी निज घरि तिष्ठ करि,
करै जगतस्यौं प्यार ॥ ५ ॥

अथ अन्य

व्यापकौं निश्चय कहौं,
अव्यापककौं व्यवहार।
व्याप अव्यापक फेरस्यौं,
भया एक द्रव्य प्रकार॥ १॥

स्वप्रकास निश्चय कहौं,
पर प्रकाशक व्यवहार।
सो व्याप अव्यापक भावस्यौं,
तातैं बानी अगम अपार॥ २॥

स्वनमैं देखो अपनी व्यापता,
इस जिय थलस्यौं सदीव।
तातैं भिन्नह्व लोकतैं,
रहूं सहज सुकीव॥३॥ इति॥ञ॥

सम्यग्दृष्टि जीव छदमस्तीकौं ज्ञान, दर्शनादि इन्द्री मन सहित अवरु इन्द्री मन अतीतका. व्यवरन किंचित॥

दोहा—

बुद्धि अबुद्धि करि दुधा,
वहै छदमस्ती धार।

इनकौं नास परमातम हुवन,
भव जल समुद्र के पार ॥ १ ॥

सोरठा—

जे अबुद्धिरूप परनाम,
ते देखै जानै नहीं ।
तिनकौं सर्व आवरन काम,
कइसै देखै जानै बापु रे ॥ २ ॥

पुनः—

जु बुध रूपी धार,
सो जथा जोग जानै देखै सदा ।
ते क्षयोपशम आकार,
तातैं देखै जानै आप ही ॥३॥

पुनः—

बुद्धि परनति षट् भेद,
भए एक जीव परनामके ।
फरस रस [रस] घ्रानेव,
श्रोत चक्षु मन छठमा ॥४॥

दोहरा—

भिन्न भिन्न ज्ञेयहि ऊपरि,
भए भिन्न थानके ईस ।
तातैं इनको इंद्र पद,
धर्‍यौ वीर जगदीस ॥५॥

पुनः—

ज्ञेयहि लक्षन भेदकौं,
मानइ चिंतइ जो ज्ञान।
ताकौं मन चित संज्ञा धरी,
लखियो चतुर सुजान ॥६॥

पुनः—

नान दंसन धारा,
मन इंदी पद इम होत।
भी इन नाम उवचारिस्यौं,
कहे देह अंगके गोत ॥ ७॥

पुनः—

यहु बुद्धि मिथ्याती जीवकै,
होइ क्षयोपशम रूप।
पै स्वपर भेद लखै नहीं,
तातैं निज रवि देखन धूप ॥८॥

पुनः—

सम्यग्दृष्टि जीवके,
बुध धार सम्यग् सदीव।
स्वपर जानै भेदस्यौं,
रहै भिन्न ज्ञायक सुकीव। ।९॥

चौपाई—

मन इंद्री तब ही लौं भाव,
भिन्न भिन्न साधै ज्ञेयकौं ठाव।
सब मिलि साधै जब इक रूप,
तब मन इंद्री का नहिं रूप ॥१०॥

पुनः—

इक पद साधनकौं किय मेल,
तब मन इंद्री का नहि खेल।
तातैं मन इंद्री भेद पद नाम,
है अतीन्द्री एक मेल परनाम ॥११॥

दोहा—

स्व अनुभव छन विषैं,
मिलै सब बुद्धि परनाम।
तातैं स्व अनुभव अतींद्री,
भयौ छद्मस्ती को राम ॥ १२ ॥

पुनः

जा विधितैं मन इंद्री होवते,
ता विधिस्यौं भए अभाव।
तब तिन ही परनाम कौं,
मन इंद्री पद कहा बताव ॥ १३ ॥

सोरठा

सम्यग् बुधि परवाह,
क्षणरूप मज्ञ क्षन रूप तट ।
पैं रूप छाडिन जाह,
यहु सम्यक्ता की माहातमा ॥ १४ ॥इति

अनुभव दोहा–

हूँ चेतन हूँ ज्ञान,
हूँ दर्शन सुख भोगता ।
हूँ सिद्ध हूँ अर्हत् ठान,
हूँ हूँ ही हूँ को पोषता ॥१॥

जैसे फटिक के विंब महि,
रहौ समाइ दीप जोति को खंध ।
जुदी मूरति परगास की,
बंधी परतक्ष फटक के मंध ॥ २ ॥

तइसै या करम खंध महि,
समाइ रह्यौ हूँ चेतन दर्व ।
पै जुदी मूरति चेतनमई,
बंधी त्रिकाल गत सर्व ॥ ३ ॥

नख शिख लगु या देह में,
वसूं जु हूं नर चेतन रूप ।
जा छन हूं हूं ही कौं लखूं,
ता क्षन हूं हौं चेतन भूप ॥ ४ ॥

याही पुद्गल पिंड महि,
वहै जु देखन जानन धार।
यहु मैं यहु मैं यहु,
जु कछु देखन जानन हार ॥ ५ ॥

यही मैं यही मैं यही,
जु घट चिचि देखत जानत भाव।
सही मैं सही मैं सही मैं,
यहु देखन जानन ठाव ॥ ६ ॥

अतः चारित्र-

हूं तिष्ठि रह्यौ हूं ही विषै,
जब इन परस्यौं कइसा मेल।
राजा उटि अंदर गयो.
तब इस सभास्यौं कइसो खेल ॥७॥

प्रभुता निज घर रहे,
दुख नीचता परके गेह।
यहु परतक्ष रीत विचारि कै,
रहियों निज चेतन गेह ॥ ८ ॥

पर अवलंबन दुःख है,
स्व अवलंबन सुख रूप।
यहु प्रगट लखाव जु चीन्हकैं,
अवलंवियौ सुख कूप ॥ ९ ॥

जावत तृष्णा रूप है,
तावत भ्रम मिथ्या जाल ।
अइसी रीत पिछानिकैं,
लीज्यौं सम्यग् विरता चाल ॥१०॥

परकै परचै धूम है,
निज परचै सुख चैन ।
यहु परमारथ जिन कह्यौ,
तिन हित की करी जु सैन ॥११॥

इस धातुमयी पिंडमयी,
रहूं हूं अमूरति चेतन विम्ब ।
ताके देखत सेवतैं,
रहे पंच पद प्रतिविम्ब ॥ १२ ॥

तब लगु पंच पद सेवना,
जब लगु निज पद की नहि सेव ।
भई निज पदकी सेवना,
तब आपैं आप पंच पद देव ॥१३॥

पंच पद विचारत ध्यावतै,
निज पदकी शुद्धि होत ।
निज पद शुद्धि होवतैं,
निज पद भव जल तारन पोत ॥१४॥

हूं ज्ञाता हूं दृष्टा सदा,
हूं पंचपद त्रिभुवन सार।
हूं ब्रह्म ईश जगदीश पद,
सोहूं के परचैंहू पार ॥ १५ ॥

इति आत्मावलोकन स्तोत्र संपूर्णम्।

इति आत्मावलोकन ग्रंथ संपूर्णम्।

॥ श्रीरस्तु ॥ कल्याणमस्तु ॥ श्री ॥